UNIVERSAL LIBRARY
OU_180087
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/S25 I Accession No. G.H.2467

Author सत्यवती मल्लिक ।

Title दो फूल । 1940

This book should be returned on or before the date last marked below.

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज़ १०९

दो फूल

(कहानियाँ)

लेखिका
श्रीमती सत्यवती मलिक

प्रकाशक
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई ४

पहली बार

अगस्त, १९४०

मूल्य सवा रुपया

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई
न्यू भारत प्रिन्टिंग प्रेस,
६, केलेवाड़ी बम्बई नं० ४

वक्तव्य

बारह वर्ष पूर्व मातृ-विछोहके ज़बरदस्त धक्केको सह कर सोचा था, कौन-सा स्मारक अपनी उन सुसंस्कृत प्रेममयी जननीकी स्मृतिमें, जो अल्प-कालहीमें, माँ, सखी, गुरु, —सभी कुछ बनकर चली गईं; खड़ा करूँ !

एक स्वप्न था, जो आज नैवेद्य रूपमें सत्य सिद्ध हो रहा है। कैसा ? मुझे इससे गरज़ नहीं। यह काम आलोचक महानुभावोंका है।

स्नेही भाई चन्द्रगुप्तजी तथा श्रद्धेय चतुर्वेदीजीकी अत्यन्त आभारी हूँ, जिन दोनोंके प्रोत्साहन और प्रेरणासे ही आज इस योग्य बन सकी हूँ।

जुलाई १९४०
नई-दिल्ली

सत्यवती

जिनकी पावन स्मृति मेरे प्राणोंमें, प्रतिक्षण
मधुमय गुञ्जार भर रही है—
उन्हीं प्यारी माताजीको !

—सत्य

लेखिकाका परिचय

"माताजी ! यह सवाल आता ही नहीं । बहुत किया, नहीं आता—" सात-आठ वर्षके भाषी (सुभाष) महाशय करुणोत्पादक ढंगसे शिकायत कर रहे थे । चेहरेपर बेहद चिन्ता थी !

चाय पीनेके बाद मैं गोर्कीके जीवन-चरितका स्वाध्याय कर रहा था और गोर्कीने रूसी साहित्य-सेवियोंकी जो अद्भुत सहायता की थी, उसका स्फूर्तिप्रद वृत्तान्त पढ़ रहा था । भाषीकी गम्भीरतापूर्ण मुखमुद्रा देखकर गोर्कीको बन्द करते हुए मैंने कहा, "लाओ भाई, मैं तुम्हारा सवाल हल करूँ ।"

"३२३ गज़, १०६ हाथ, २५ गिरह और ५ अंगुलके अंगुल बनाओ," कुछ ऐसा ही सवाल था । दो बार कोशिश की, पर उत्तर ठीक नहीं मिला । बड़ी झुँझलाहट हुई । भाषीजी कह रहे थे, "सिर्फ़ एककी ग़लती पड़ जाती है ।" फिर मैंने प्रयत्न किया, पर फिर वही असफलता ! तंग आकर मैंने कहा, "यह सवाल मुझसे नहीं होता ।"

भाषीकी सुयोग्य माता श्रीमती सत्यवती मलिकने, जो दूरपर बैठी हुई कुछ काम कर रही थीं, बड़े प्रेमपूर्वक भाषीको अपने पास बुला लिया और उसका सवाल हल करनेमें लग गईं ।

मैंने मनमें सोचा कि बच्चोंका पालन-पोषण, पढ़ाना-लिखाना और साहित्य-सेवा इन सबको साथ ले चलना अत्यन्त ही कठिन कार्य है, और श्रीमती सत्यवतीजी इस कठिन कार्यको बड़ी लगन, सफलता और माधुर्यके साथ कर रही हैं । आदर्श पत्नी, सुसंस्कृत गृहस्थ और प्रेमी माता होनेके साथ साथ वे सफल कलाकार भी हैं । घरेलू जीवनको किस प्रकार कलापूर्ण और सौन्दर्यमय बनाया जा सकता है, यह कोई उनसे सीख ले । सच तो यह है कि उनकी कलाका स्रोत उनके जीवनका सौन्दर्य ही है ।

कभी भाषीके साथ वे ड्राइंग सीखती हैं,—और भाषीको इस बातका अभिमान है कि उसने पत्तेकी जो शक्ल खींची वह माताजीकी बनाई हुई शक्लसे कहीं अच्छी है, कभी कपिलाके साथ गान-विद्याका अभ्यास करती हैं और कभी अपने सुशिक्षित पतिदेव श्रीयुत रामलाल मलिकसे वर्ड्सवर्थकी कविताओंके अर्थ पूछती हैं । इसके सिवाय उन्हें

अपने ज्येष्ठ पुत्र केशवकी भी चिन्ता रहती है जो बाहरी किताबें ज़्यादा पढ़ता है और खेलनेके लिए काफी वक्त नहीं देता! घरके सारे काम-काज तो उन्हें करने ही पड़ते हैं। और इन सबके ऊपर हैं उन सम्पादकोंके तकाज़े जिन्होंने शायद यह समझ रखा है कि श्रीमती सत्यवती-जीको कहानी लिखनेके सिवाय कोई काम ही नहीं रहता! दिल्लीके साहित्यिक तथा सांस्कृतिक जीवनकी जिम्मेवारियाँ भी कभी कभी उनपर आ पड़ती हैं; पर एक चतुर बाजीगरकी भाँति वे इन सब कार्योंको एक साथ बड़ी आसानीसे और बिना किसी झुँझलाहटके करती चली जाती हैं।

यद्यपि हम श्रीमती सत्यवतीजीके स्केचोंके प्रशंसक हैं,—उनकी अमरनाथ-यात्रा तो गद्य-काव्यका एक उत्कृष्ट उदाहरण है, और उनकी साहित्यिक सुरुचि और सुलझे हुए दिमागके भी क़ायल हैं, तथापि उनके जिस गुणको हम सर्वोच्च स्थान देते हैं वह है उनका मातृत्व। और माताके रूपमें ही उनका स्मरण किया जा सकता है। उनकी रचनाओंमें वात्सल्यकी जो मनोहर उद्भावना हुई है वही उनकी कलाकी विशेषता है। अभी वे अपने बच्चोंकी माँ हैं; पर आगे चलकर वे किसी बालक-बालिका-आश्रममें एक बृहत् बाल-कुटुम्बकी माँ बननेकी आकांक्षा रखती हैं। एक पत्रमें उन्होंने लिखा था, "आश्रम बनानेकी इच्छा तो बड़ी है, और इसीलिए सबसे पहले मैं स्वयं कुछ सीखना चाहती हूँ। कुछ मास ड्राइंग अच्छी तरह सीखनेमें लगाने हैं। हमारे देशमें बच्चोंकी प्रारम्भिक शिक्षाकी बड़ी दुर्दशा है। सुभाषको आजकल मैं स्वयं ही पढ़ाती हूँ, स्कूल जाना बन्द कर दिया है। छोटे बच्चोंके लिए किताबें भी लिखनी हैं। सो मेरा यह सब प्रयत्न तो बच्चोंके एक छोटे-से स्कूल या आश्रमके लिए ही है; आगे जीवन और परिस्थितियोंपर निर्भर है।"

सुयोग्य माता-पिताकी सन्तान

"प्रातःकालकी शान्त स्निग्ध वेलामें, जब मेरी नींद खुलती है, अपना श्रीनगरका सफेद कमरा मेरी आँखोंके सामने घूम जाता है। सर्दियोंके दिन होते थे। कमरेके बाहर बराण्डेमें चारों ओर घासकी चटाइयाँ बर्फ़ीली हवाको रोकनेके लिए लगी होती थीं और कमरा भी चारों ओर गर्म पर्दोंसे ढका रहता था। बाहर सड़कोंपर और छतोंपर तमाम

बर्फ़ ही बर्फ़ पड़ी होती जिसे हम रजाईमेंसे ज़रा-सा झाँककर खिड़कीके किसी भागमेंसे, जहाँ पर्दा कुछ हटा होता, देख लेतीं। साढ़े चार बजे अँगीठी सुलगाते हुए अथवा कमरेमें झाड़ू लगाते हुए माताजीके गानेकी आवाज़ कानोंमें पड़ती। हम भाई-बहनोंकी इच्छा होती कि अभी कुछ देर बिस्तरोंमें लेटी रहें; पर उसके बाद जब पूज्य पिताजी भी माताजीके साथ उसी स्वरमे गाने लगते तो मैं, भाई जयदेव तथा छोटी बहनें भी साथ साथ गाने लगतीं :

" किस भरोसे सोये रह्या तू, रहणा ई दो दिन चार बन्दे।
तूँ कुछ कर उपकार जगतमें—
मानुष जनम अमोलक तैनूँ मिलै न बारम्बार।" *

श्रीमती सत्यवती मलिककी पूज्य माताजी अत्यन्त परिश्रमी थीं, और उनकी साधना और तपके कारण ही यह कुटुम्ब इतना सुसंस्कृत बन सका। दुर्भाग्यसे माताजीका देहान्त कम उम्रमें ही हो गया। उस समय सत्यवतीजी १९ वर्षकी थीं। उनका विवाह हो चुका था, फिर भी डेढ़ वर्षतक मायकेमें ही रहकर उन्होंने भाई-बहनोका पालन-पोषण किया। अपनी छोटी बहनोंके प्रति उनके हृदयमें मातृस्नेह ही पाया जाता है। अब भी अपनी छोटी बहन श्रीसन्तोषकुमारीको, जो एम० ए० में पढ़ रही हैं, वे अपनी स्निग्ध छत्र-छायामें ही रख रही हैं।

श्रीमती सत्यवतीजीके पिता श्री लाला चिरंजीवलालजी श्रीनगरके एक अत्यन्त प्रतिष्ठित नागरिक रहे हैं। वर्षोंसे उनका घर अतिथियोंके लिए विश्राम-स्थल रहा है। स्थानीय आर्य-समाजके वे प्रधान स्तम्भ रहे हैं। सन्तानोंके पालन-पोषणके लिए यदि कोई कालेज खोला जाय तो उसके प्रिंसिपलका पद उस व्यक्तिको ही मिलना चाहिए जिसने सुप्रसिद्ध कवियित्री श्री पुरुषार्थवती देवी, प्रख्यात देशसेविका श्रीमती उर्मिलादेवी तथा सुलेखिका श्रीमती सत्यवती मलिकको जन्म दिया और सुशिक्षित बनाया।

जब हमारे कोई बन्धु सत्यवती मलिककी कलापूर्ण रचनाओंकी प्रशंसा करते हैं, तो हम उन्हें यही जवाब देते हैं कि इसका श्रेय ५१ फी सदी उनके पूज्य माता-पिताको है, ४१ फी सदी उनके सुयोग्य पति श्री मलिकजीको है

* 'मेरी माताजी' नामक एक अप्रकाशित लेखसे।

और शेष आठ फी सदीमें उनकी बहनों तथा बच्चोंका हाथ है जिन्हें पढ़ानेके लिए उन्हें खुद पढ़ना पड़ता है। और हाँ, उनकी नानीका हिस्सा तो हम भूल ही गये जो पंजाबी भाषाकी एक कवियित्री थीं। इस हिसाबसे सत्यवतीजीको १–२ फी सदीसे अधिक श्रेय नहीं मिल सकता। अब यह बात पूरे तौरपर हमारी समझमें आ गई है कि लड़कियोंको योग्य बनानेके लिए हमें उनकी नानियोंसे शुरू करना चाहिए।

अभी उस दिन बन्धुवर जैनेन्द्रजीने कहा था, " अगर आप किसी बच्चेके मुँहपर स्वास्थ्यप्रद, सौम्य और निरपराध लालिमा देखें, या कहीं सुसंस्कृतिकी कली खिलती हुई दीख पड़े, तो समझ लीजिए कि उसके पीछे किसी माता-पिताकी अथवा पति-पत्निकी साधना है जो अपनेको दिन रात खपा रहे हैं। "

दिनमें साठ साठ मील साइकिलपर चक्कर काटनेवाले लाला चिरंजीव-लालजीकी साधना और सबेरेके ९ बजेसे रातके ८ बजे तक दूकानपर पिसनेवाले मलिकजीका घोर परिश्रम ही उस सांस्कृतिक वायुमण्डलके मूलमें है जो आज मलिक-परिवारमें पाया जाता है।

स्वर्गीय दीनबन्धु एण्ड्रूजने एक पत्रमें मुझे लिखा था, " Maliks are most charming people and I am grateful to you for having introduced them to me. " अर्थात् " मलिक-परिवार अत्यन्त आकर्षक है, और उसका परिचय करा देनेके लिए मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। "

प्रगतिशील साहित्यिक

श्रीमती सत्यवतीजी वस्तुतः प्रगतिशील हैं। आज चेखव पढ़ रही हैं, कल तुर्गनेव, तो परसों इब्सन। कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथकी तो वे अनन्य भक्त हैं, और मूल बंगलामें ही उनके ग्रन्थोंको पढ़ती हैं। चित्रकलाका भी उन्हें शौक है, और सितार बजानेका अभ्यास उन्होंने कई वर्ष किया था। घरके गोरख-धंधोंमें फँसी रहनेपर भी वे 'बलाका' (रवीन्द्र), 'लीज़ा' (तुर्गनीव), 'डाल्स हाउस' (इब्सन) 'गुड अर्थ' (पर्ल बक) इत्यादिको पढ़नेके लिए वक्त निकाल लेती हैं। श्रीमती सत्यवतीजीका पुस्तकालय उनके विवेक तथा प्रगतिशीलताका सूचक है।

११-२-३८ के पत्रमें उन्होंने लिखा था, " बहुत-सा समय तो मुझे

बच्चोंकी पढ़ाईके लिए देना पड़ता है—विशेषतया भाषीकी। उर्मिलाजीका छोटा लड़का भी बड़ा समझदार किन्तु शरारती है, सो दोनों मिलकर काफ़ी परेशान करते हैं।"

५-५-३८ की चिट्ठीमें लिखा था, "गर्मी बहुत है, इसलिए लिखने-पढ़नेका कुछ भी कार्य नहीं हो रहा है। केवल गृहस्थीके गोरख-धंधोंमें ही दिन बीत रहे हैं। कभी चूल्हा, कभी तन्दूर। बच्चोंके स्कूल सबेरेके हैं, सो दिन-भर उनके साथ सिपाहियोंकी तरह ड्यूटी देनी होती है।"

'टाम काकाकी कुटिया' (Uncle Tom's Cabin) की अमर लेखिका श्रीमती हैरियट एलीज़बेथ स्टोके उदाहरणसे वे भारतीय महिलाएँ, जिन्हें घर-गृहस्थी चलाते हुए साहित्य-सेवा करनेका शौक़ है, कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। श्रीमती स्टो पाँच बच्चोंकी माँ थीं और जब छठा बच्चा उनके हुआ था तो उन्होंने अपनी भाभीको लिखा था, "भाभी, जब तक बच्चा रातको मेरे पास सोता है, तब तक मैं कोई काम नहीं कर सकती; पर मैं करूँगी ज़रूर। अगर ज़िन्दा रही, तो दासत्व-प्रथाके खिलाफ ज़रूर लिखूँगी।"

श्रीमती स्टो बर्तन साफ़ करतीं, कपड़े धोतीं, वस्त्र सीतीं, किवाड़ोंपर रंग करती और पतिदेवके जूते भी गाँठ दिया करती थी!

श्रीमती सत्यवतीजीकी रचनाएँ

श्रीमती सत्यवतीजीने अधिक नहीं लिखा है; पर जो कुछ लिखा है, बहुत अच्छा लिखा है। उनकी कहानियों तथा स्केचोंका यह संग्रह 'दो फूल' प्रकाशित हो रहा है। गार्हस्थ्य जीवनके माधुर्यकी जैसी अद्भुत छटा इन रचनाओंमें दीख पड़ती है, वैसी शायद ही किसी हिन्दी-लेखिकाने चित्रित की हो। कई रचनाएँ तो अपनी क़िस्मकी अद्वितीय हैं, यथा 'नारी-हृदयकी साध', 'वसन्त है या पतझड़', 'भाई-बहन' और 'साथी'। उनका 'क़ैदी' नामक स्केच पढ़कर तो सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक चेखवकी कलाका स्मरण हो आता है।

'दो फूल' के अतिरिक्त उनकी दो रचनाएँ क़रीब क़रीब तैयार हैं जिनमें एक तो अपनी सुपुत्री कपिलाके लिए सुन्दर लेखोंका संग्रह है और दूसरीमें बच्चोंके लिए काश्मीरके सुन्दर स्थलोंका वृत्तान्त है। इन ग्रन्थोंके प्रकाशित होनेपर श्रीमती सत्यवती मलिककी साहित्यिक सुरुचि

तथा योग्यताका पता हिन्दी-पाठकोंको लग जायगा। श्रीमती सत्यवतीजीकी प्रशंसा हम इसलिए नहीं कर रहे कि वे कोई बड़ी भारी लेखिका बन गई हैं, बल्कि इसलिए कि उनमें योग्य लेखिका बननेकी अन्तर्निहित शक्ति (Potentiality) विद्यमान है।

नारी-हृदयके भावोंका कलापूर्ण और मनोविज्ञानिक विश्लेषण श्रीमती कमलादेवी चौधरीका क्षेत्र है और श्रीमती होमवतीजीमें हिन्दू-नारीके दुर्भाग्यों तथा दुःखोंका वर्णन करनेकी शक्ति है; पर कुछ चीज़ें ऐसी हैं जो सत्यवतीजीकी निजी विशेषताएँ हैं। बाल मनोविज्ञानका बड़ा ही आकर्षक वर्णन उनकी रचनाओंमें पाया जाता है, कहीं कहीं तो मातृप्रेमका वह स्वच्छन्द झरना उन्होंने बहाया है कि पढ़-कर तबीयत खुश हो जाती है। और प्राकृतिक सौन्दर्यका चित्रण तो मानो उन्हींके हिस्सेमे आया है। यह चित्रण नपे-तुले शब्दोंमें यथा-स्थान इतने सुन्दर ढंगसे किया है कि उनके उच्चकोटिके कलाकार होनेमें किसीको सन्देह नहीं हो सकता। काश्मीरकी हिमाच्छादित घाटियों, मनोहर झीलों तथा विशाल वृक्षोंने जो पाठ उन्हें पढ़ाये हैं वे अधिकांश लेखक-लेखिकाओंके लिए दुर्लभ हैं। हिमालयके उच्च शृङ्गोंसे गिरते हुए प्रपात और चट्टानोंसे टकराती हुई पहाड़ी नदियोंकी उत्ताल तरङ्गोंकी ध्वनि उनके जीवनमें समा गई है,—उनके अस्तित्वमे ओतप्रोत हो गई है, परंतु उनकी सौन्दर्य-भावना काश्मीर तथा हिमालय तक ही सीमित नहीं है। हरे भरे खेतोंमें खिले हुए सरसोंके बसन्ती फूल, बागोंमें फलोंसे लदे हुए वृक्ष, खेतके किनारे कुएँपर चलता हुआ रहँट और उसकी मधुर ध्वनि,—ये सारे सौन्दर्य उन्हें तन्मय बना देते हैं। इस प्रकार उनकी कला दो रूपोंमे हमारे सामने आती है, एक है गार्हस्थ्य जीवनका माधुर्य और दूसरी प्राकृतिक सौन्दर्यकी भावना।

एक बात

हमें खेदके साथ कहना पड़ता है कि हिन्दी-कवयित्रियों तथा लेखिकाओंमें हमें एक भी ऐसी नहीं दीख पड़ी जो सर्वसाधारणके साथ अपनेको बिल्कुल मिला देनेमें समर्थ हुई हो, जो मूक दीन-हीनोंको वाणी प्रदान कर सकी हो और जिसके हृदयकी आकांक्षाएँ तथा दैनिक जीवनकी क्रियाएँ एक ही दिशामें साथ साथ चलती हों। इसका मुख्य

कारण यह है कि ये लेखिकाएँ प्रायः मध्यमश्रेणीकी हैं, और जब कभी गरीब बहनोंके साथ मिलने-जुलनेका प्रयत्न वे करती भी हैं तो उनके प्रयत्नमें एक प्रकारकी कृत्रिमता-सी आ जाती है। इसमें उनका दोष बहुत कम है। जब देशके सर्वमान्य नेता श्रीजवाहरलालजी भी अपने आभिजात्यके अभिमानको छोड़नेमें पूर्णतः सफल नहीं हो सके, तब मामूली स्त्री-पुरुषोंकी तो बात ही क्या है। अपने वर्गकी त्रुटियों, कमज़ोरियों और सीमाओंको उल्लंघन करना एक प्रकारका योग है, और योगी बनना कोई आसान बात नहीं। सत्यवतीजीके हृदयमें गरीब जनताके प्रति वास्तविक सहानुभूति है और वे उस अवसरकी प्रतीक्षा भी कर रही हैं जब उन्हें समाजके निम्नतम धरातलपर रहनेवालोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेका सुअवसर प्राप्त होगा। कई रचनाओंमें उनके ये हृद्गत भाव झलक भी गये हैं और उनसे यह स्पष्टतया प्रकट होता है कि वे समयकी गतिसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहीं। पर साथ ही यह बात हमें कहनी पड़ती है कि भारग्रस्त मध्यवर्गीय महिलाओंके लिए वह मार्ग अत्यन्त कठोर है,

"वह रंग ही नया है, कूचा ही दूसरा है।"

मध्यवर्गीय हिन्दी-लेखिकाएँ भले ही उस दुर्गम पथपर न चल सकें; पर उन्हें एक बात हर्गिज़ न भूलनी चाहिए कि जब तक वे साधारण स्त्री-समाजके लिए,—जो अशिक्षा, अज्ञान और अन्ध-विश्वासके गर्त्तमें गिरा हुआ है, नित्यप्रति कुछ त्याग न करेंगी, तब तक उनकी साहित्य-सेवाका भवन बालूकी नींवपर ही रखा रहेगा। अपने सुख, सुविधाओं और साधनोंको निर्धन अभागी बहनोंके साथ मिल-बाँटकर उपयोग करनेसे उन्हें तथा उनकी सन्तानको अनन्त अशीर्वाद मिलेंगे। हमारे समाजकी नींव ग़रीब प्राणियोंके परिश्रमपर रखी हुई है और हम मध्यम-श्रेणीवालोंका कर्तव्य है कि कमसे कम प्रायश्चित्त-स्वरूप ही उनकी कुछ सेवा करें। आज भारतकी लाखों गरीब माताएँ जिस त्याग तथा तपके साथ अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं, उसका शतांश क्या सहस्रांश भी पढ़ी-लिखी औरतोंमें नहीं पाया जाता। यद्यपि युग-धर्मके अनुसार उसी नारीको हम आदर्श मानते हैं जो भावी समाजके निर्माणके विषयमें स्पष्ट विचार रखती हो और जिसके जीवनका क्षण क्षण उस कल्पित आदर्शकी दिशामें कार्य करनेमें बीतता हो, तथापि हम कठमुल्ले

नहीं हैं। वर्त्तमान लेखिकाओंके महत्त्वको हम कम नहीं समझते। वे वस्तुतः मार्ग तैयार कर रही हैं उस महान लेखिकाके लिए जो समाजके निम्नतम धरातलसे उठकर आवेगी और जो सामाजिक विषका भरपूर पान कर भारतीय जनताके लिए साहित्यिक रसायन-रूपी अमृत तैयार करेगी। साहित्योपवनकी ये चमेली, जुही और चम्पा उस वटवृक्षकी अग्रगामी हैं जो कभी हमारे इस उद्यानमें उगेगा और जिसकी शीतल छायामें अगणित हिन्दी-भाषियोंको आश्रय और विश्राम मिलेगा। गोर्कीकी 'माँ' में जिस माताका चित्र खींचा गया है, वह हिन्दी-जगतमें अवतीर्ण ही नहीं हुई।

एक घटना

श्रीमती सत्यवती मल्लिकका ज़िक्र करते हुए हम एक घटनाको कभी नहीं भूल सकते। शान्ति-निकेतनकी यात्रामें कितने ही हिन्दी लेखक-लेखिकाओंके साथ बोलपुर जानेका सौभाग्य हमे प्राप्त हुआ है, और हमारे मनमें यह आशका निरन्तर रही है कि कहीं किसीको कुछ कष्ट न हो। इस तीर्थ-यात्रामें ९०-९५ फी सदी हिन्दीवालोंने भोजन इत्यादिकी शिकायत की! वे खान-पान-सम्बन्धी प्रान्तीय भेदोंको भूल नहीं सके; पर श्रीमती सत्यवतीजी उन दो-तीन व्यक्तियोंमेंसे हैं जिन्होंने बड़ी सहनशीलता प्रकट की और अपनी सुसंस्कृतिका परिचय दिया।

यह स्वाभाविक सुसंस्कृति ही श्रीमती सत्यवतीजीकी सबसे बड़ी विशेषता है। इन चार-पाँच वर्षोंमें हमने उनसे किसी महिलाकी निन्दा नहीं सुनी। स्त्रियोंके इस भयंकर दुर्गुणसे वे सर्वथा मुक्त हैं। उन्हें कभी किसीके प्रति ईर्ष्या प्रकट करते हुए नहीं देखा और क्या मजाल कि एक भी आक्षेप-योग्य शब्द उनके मुखसे निकल जाय।

एक वाक्यमें यों कहिए, सत्यवतीजी एक सुसंस्कृत माता हैं, और यदि वे लेखिका न भी होतीं, तब भी हमारे आदर और श्रद्धाकी पात्र होतीं। सच पूछो तो देशको योग्य माताओंकी जितनी आवश्यकता है, उतनी लेखक-लेखिकाओंकी नहीं।

टीकमगढ़, (मध्य-भारत)
२० जुलाई १९४०

—बनारसीदास चतुर्वेदी

सूची

			पृ० सं०
१	दो फूल	...	१
२	नारी हृदयकी साध	...	६
३	जीवन सन्ध्या	...	९
४	वे क्षण	...	२३
५	एक सन्ध्या	...	२५
६	कब्रिस्तानमें	...	२७
७	भाई-बहन	...	३४
८	बेकारीमें	...	४१
९	हसन	...	४८
१०	डायरीसे	...	५५
११	श्यामा	...	६०
१२	सगाईके दिन	...	७४
१३	वसन्त है या पतझड़	...	८०
१४	उलझन	...	८६
१५	मालीकी लड़की	...	९३
१६	स्मृति	...	१०५
१७	सुमाना	...	११२
१८	साथी	...	१२०
१९	कैदी	...	१२९

दो फूल

"अन्नाजी! केशी भैया! ज़रा बाहर आना। बड़ी अच्छी बात है।" इसपर भी जब मेरे और केशीमेंसे कोई बाहर नहीं आया, तो अगले ही क्षण फिरसे आवाज़ आई, "जल्दी करो न केशी भैया! तुम तो उठते ही नहीं। बाहर देखो तो सही, कितनी अच्छी बात है।" मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कपिलाकी यह पतली, चीखती हुई, हाँफती-सी पुकार समाप्त ही न होगी।

केशवको जगाना कोई आसान काम नहीं। जितनी बार मुझे बच्चोंके कमरेमेंसे होकर जाना पड़ता है, उतनी ही बार "केशवजी, उठो! केशवजी, उठो!" की रट लगाये रहती हूँ, और उसपर भी केशीजी उठनेका नाम नहीं लेते; लेकिन कपिलाकी इस 'अच्छी बात' की उत्सुकताने उसे पलंगपर

और अधिक न लेटने दिया। फौरन उठकर एक ही छलाँगमें, सामनेवाले पलँगको पार करता हुआ, वह बरामदेमें जा पहुँचा; मगर कपिलाकी पुकार अभी तक समाप्त नहीं हुई थी। वह चिल्लाये जा रही थी, "अन्नाजी, अन्नाजी बाहर आओ, बड़ी अच्छी बात है !"

"आज पहले ही बड़ी देर हो गई थी। अभी तक बच्चोंका दूध भी गर्म नहीं हुआ था। थोड़ी देरमें इन लोगोंके स्कूल जानेका समय हो जायगा। ये तो बिना मतलब ही 'अन्नाजी, अन्नाजी !' चिल्लाये जायँगे। जल्दी जल्दी नहा-धो लूँ, तो इनके खाने-पीनेका बन्दोबस्त करूँ। यह सोचकर मैंने खूँटीसे तौलिया और सामनेकी ड्रेसिंग टेबिलसे टुथपेस्ट-ब्रश उठाया ही था कि इतनेमें मुझे कपिलाके साथ साथ छोटे मियाँ (सुभाष उर्फ भाषी साहब) की भी तुतली-सी आवाज़ सुनाई देने लगी, "अन्नाजी, अन्नाजी !"

अब तो मुझे बच्चोंका फरमान मानना ही पड़ा। तौलिया कन्धेपर डाल और साबुन-टूथपेस्ट वहीं मेजपर फेंककर मुझे उस ओर जाना ही पड़ा।

बच्चोंके कमरेके सामने ही खुला बरामदा है। कमरेमेंसे गुज़रते हुए मैंने झुँझलाकर कहा, "कपिला, क्या बात है? आज कुछ काम नहीं करने दोगी? इस तरह चिल्ला क्यों रही हो?"

कपिला और केशी दोनों एक स्वरसे बोल उठे, "अन्नाजी, आकर देखो तो सही। उस दिन गमलेमें गुलाबका जो पेड़ लगाया गया था उससे फूल निकलनेवाला है। देखिए न उसका गुलाबी गुलाबी रंग भी दिखाई देने लगा है।"

मैंने देखा, सचमुच ही चीनीके उस बेल-बूटोंवाले गमलेमें, हरी-हरी पत्तियोंके घने झुरमुटके भीतर, काँटेदार टहनीके साथ दो कलियाँ दिखाई दे रही हैं। एक तो अभी बिलकुल बन्द थी और दूसरी साफ़ गुलाबी रंगत लिये, अधखिली मुसकरा-सी रही थी, मानो बच्चोंसे इस तरह अपना स्वागत पाकर खुश हो उठी हो।

दूसरे दिन सुबह फिरसे वही सब बातें दोहराई गईं। कपिला चिल्लाई, "अन्नाजी, बड़ी अच्छी हो; ज़रा बाहर चलकर देखो तो, सारा फूल खिल गया है। कैसा सुन्दर है!"

इसी वक्त मानो अपने जिस्मका छोटा-सा इंजन ड्राइव करते हुए भाषी साहब भी अन्दर आ पहुँचे। उन्होंने कहा, "बला छुन्दल है, अन्नाजी!"

उस 'छुन्दल' फूलको देखनेकी उत्सुकता आज स्वयं मेरे जीमें भी थी। सीना-पिरोना बीचमें ही फेंककर एक ही छलाँगमें बरामदे तक जा पहुँची और उस गमलेकी ओर देखा, तो हृदय नाच उठा। दोनों फूल पूरी गुलाबी रंगत लिये भीनी भीनी महकके साथ यौवनके उन्मादमें हिलोरें ले रहे थे। उन दोनोंमें आज अजीब मोहिनी मस्ती थी। उनमें वह मद दिखाई दे रहा था, जिसके नशेमें नवयुवक-हृदय अपना अस्तित्व भी भूल बैठते हैं।

पहाड़ोंपर अथवा हरे-भरे मैदानोंमें रहनेवाले लोगोंको दो फूलोंकी यह कथा शायद बिलकुल निराश ही कर दे; परन्तु, कलकत्तेकी चित्तरंजन एवेन्यूके पक्के 'बिज़िनेस सेन्टर'में

ईंट-पत्थर और सुर्खीसे बने ठोस मकानके बरामदेमें इस सुन्दर गमलेके इन दो फूलोंकी क़ीमत मेरे लिए सचमुच किसी बाग़से कम नहीं थी। मुझे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे मेरे घरमें आज प्रकृति-माताका आगमन हुआ हो। बच्चे भी आज कितने खुश हैं!

फूलोंसे बच्चोंको बड़ा प्रेम होता है; परन्तु छोटे मियाँ जैसे शरारती बच्चे तो इसे तोड़े-मरोड़े बिना कैसे रह सकेंगे। यह सोचकर मैंने वह गमला पासकी एक बड़ी मेज़पर रखनेका निश्चय कर लिया। इस इरादेसे मैंने अभी वह गमला उठाया ही था कि सहसा हाथ बढ़ाकर भाषीने एक फूल बड़ी निर्दय-ताके साथ तोड़ लिया। मैं बौखला गई; मगर मेरा क्रोध व्यर्थ था, क्योंकि वह भाषीकी आन्तरिक निष्पाप खुशी तक पहुँच ही न सकता था।

अब तो पिछले तीन दिनोंसे मैं बच्चोंके बुलाये बिना ही प्रातःकाल सबसे पहले उसी गमलेके पास चली जाती हूँ। आज चौथा दिन है। मैंने देखा, आज उस अकेले फूलका बुढ़ापा भी समाप्त होता हुआ दिखाई दे रहा है। सब पत्तियाँ एक-एक करके झड़ती जा रही थीं। फूलकी युवावस्थाके अव-शेषोंके रूपमें गुलाबी रंगकी मुर्झाई-सी पँखुड़ियाँ अब भी गमलेकी सतहपर बिखरी पड़ी थीं। फूलकी वह सारी शोभा इन तीन ही दिनोंमें नष्ट हो चुकी थी। उफ़्, उसका सारा जीवन ही चार दिनोंका था! इन्हीं चार दिनोंमें वह नवविक-सित कलिका बनी, जिसके सामने एक सुनहला आशामय भविष्य था। इन्हीं चार दिनोंमें उसने यौवन-मदकी हिलोरें

खाई, जब उसके समान सुन्दर संसार-भरमें और कुछ भी न रहा होगा, और अब इन्हीं चार दिनोंमें वह इतिहासकी चीज़ बन गया-सा दिखाई देता है।

ओह, मैंने तुझे अपने भाषीसे बचाया था; मगर फिर भी मैं महाकालसे तेरी रक्षा नहीं कर पाई! एक क्षण तक बड़े गम्भीर भावसे मैंने उस मुरझाये गुलाबके फूलकी ओर देखा। उसके बाद मेरे शरीरमें कँपकँपी-सी दौड़ गई। मानो वह मुझसे कह रहा था, "क्या तुम्हारे मानव-जीवनका इतिहास भी मेरे समान नहीं है?"

कपिला बिस्तरेसे उठी और सीधी मेरे पास बरामदेमें आकर खड़ी हो गई। गमलेके निकट पहुँचकर वह कुछ कहने ही वाली थी कि उस मुरझाये हुए फूलपर निगाह पड़ते ही वह स्वयं चुप रह गई। मानो वह छै सालकी ज़रा-सी बच्ची जीवनकी किसी बड़ी उलझनको सुलझानेका प्रयत्न कर रही हो।

लाहौर १९३५

नारी-हृदयकी साध

वेदमें यम और यमी नामके दो भाई-बहनोंकी बात पढ़कर सहसा मुझे प्रकृति माताकी एक युगल सन्तानकी याद हो आई है। मेरी मानसिक दृष्टि अचानक जा पहुँची है हिमाच्छादित, शुभ्र-शिखरोंकी शीतल छत्र-छायामें, फेनराशि फेंकती हुई दूधकी नदी-सी लम्बोदराकी जल-धाराकी ओर और लम्बोदराके उस पार, चीड़, देवदारु, भोजपत्रके हरे-भरे सघन तरुओंके बीच। स्वर्गकी वह भू-पतिता घाटी-सी जिसे काश्मीरी लोग 'पहलगाँव' कहते हैं।

आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ, हाथमें हाथ डाले और कन्धेसे कन्धा भिड़ाये हिमालयकी श्रेणियाँ ऐसी खड़ी हैं, मानो सृष्टि-नाटकके अभिनयका सूत्रपात करते हुए विधाताने सुर-बालाओंको हरित, श्वेत और पीत परिधानोंसे सुसज्जित नृत्य करानेकी इच्छासे वहाँ ला खड़ा किया हो। परन्तु अभागिनी लम्बोदरा किसी नासमझ नवयुवतीके समान अपने हृदयके उतावलेपनपर विजय नहीं पा सकी। इस सुन्दर स्थानपर पहुँचनेसे पूर्व ही पर्वतकी भीमकाय शिलाओंका मुकाबला करके उसने अपना हृदय चीर डाला। इस स्वर्ग-सदृश घाटीमें पहुँचकर भी उसकी अगणित अश्रुधाराएँ असीम विरह-व्यथाके भारी भारको लेकर समाप्त नहीं हुई। वह अब भी पुकार-पुकारकर हाहाकार कर उठती है।

और लम्बोदराका भाई शेषनाग ! वह तो नदी होकर भी पुरुष है ! उसके दिलमें वह उतावलापन, भावोंका वह उफ़ान कहाँ ? किसीसे मिलनेकी चाह उसके जीमें भी है; मगर वह पुरुष जो है। पुरुष होनेके कारण ही वह राह-भरके झरनोंपर अपना रोब गाँठता आया है—कहीं उछलकर, कहीं शोर मचाकर और कहीं तेज़ीसे दौड़कर। मार्ग-भरमें वह अपनी अज्ञात प्रियतमाके लिए अभीसे उपहार भी बटोरता आया है, और इस हरी-भरी तथा शान्त घाटीमें पहुँचकर जैसे वह बड़ा गम्भीर और विचारवान् बन गया है।

बहन मानो वेदना, पीड़ा और दर्दसे सिसक रही है। लम्बोदराका नारी-हृदय प्रेमकी जिस चरम-सीमा तक—जिस गहराईतक—पहुँच पाया है, वहाँ तक शेषनाग शायद लाखों जन्म बाद भी न पहुँच सकेगा। गम्भीर तरुण विरहिणी—जिसको अपने भविष्यका कुछ भी ज्ञान नहीं; जिसे यह भी ज्ञात नहीं कि उसका विरह किस व्यक्ति या किस पदार्थके लिए है—नहीं जानती कि सर्वस्व समर्पण कर देनेकी उसकी इच्छाका अन्त कहाँ है। उसे नहीं मालूम कि उसका प्रबल प्रवेग कहाँ जाकर शान्त होगा। एक ही धुनमें, अपनी रहस्यमयी साधको पूरा करनेकी आशामें, उसने न-जाने कितने दिन, कितने महीने और कितने वर्ष बिता दिये हैं ! न-जाने कितनी अँधेरी और कितनी चाँदनी रातें उसने सिसक-सिसककर काटी है !

भाईने अपनी बहनको देखा। लम्बोदराके अथाह हृदयका

सभी कुछ तो नहीं जान पाया, फिर भी बहनके जीकी कसक उससे छिपी न रही। शेषनाग कुछ ही पत्थरोंका अन्तर छोड़कर लम्बोदराके समानान्तर बहने लगा और पुरुषोचित साहसके साथ उसने पूछा, "बहन, इतना भी क्या? ऐसा उन्माद भी किस कामका? जिसके विरहमें रात-दिन एक करके तुम शीघ्रतासे भागी जा रही हो, उसे तुम नहीं जानतीं, मगर मैं उसे जानता हूँ। वह महास्वार्थी है, और एकदम हृदय-हीन है। तुम उससे जाकर मिलोगी, तो वह तुम्हारा अस्तित्व भी मिटा देगा। तुम्हारे इस मिलनके दो मील नीचे ही तुम्हारा नाम भी कोई न जानेगा।

नवयुवती लम्बोदरा तपस्विनीकी भाँति धीरेसे कह उठी, "भाई, इस तरह चुपचाप अपना अस्तित्व मिटा देनेकी चाह ही तो नारी-हृदयकी सबसे बड़ी साध है!"

शेषनागने यह सुना और उसे निश्चय हो गया कि उसकी बहन पगली हो गई है। एक समझदार युवकके समान वह धीरेसे और चुपकेसे पृथक् हो गया।

कलकत्ता १९३५

जीवन-संध्या

सरलाके एक साथ किये गये अनेक प्रश्नोंके उत्तरमें गंगाने जब लापरवाहीसे सिर्फ़ इतना ही कहा कि 'मनोहर बाबू कालेजमें प्रोफेसर बनकर आये हैं और मनोहरके पिता नहीं हैं,' तो सरला आँखें गड़ाकर गंगाके चेहरेकी ओर इस तरह देखने लगी, मानो उसका पेंसिल-स्केच खींच रही हो।

हाथोंमें सोनेकी चमचमाती चूड़ियाँ, कानोंमे सफेद मोती, बदनपर रेशमकी रंगीन साड़ी और तिसपर 'मनोहरके पिता नहीं हैं,' ऐसा वज्र-सा कठोर वाक्य कहते हुए न तो गंगाकी आँखोंमें दो बूँद पानी आया और न उसके मुँहसे ठंडी साँस ही निकली। क्षण-भर चुप रहनेके बाद सरला भीतरी भावको दबाकर बड़ी-बूढ़ियोंकी भाँति बोली, "बहन, बेटेकी मा भी तो आधी सुहागिन होती है।"

बरामदेसे लौटकर जब गंगाने कमरेके भीतर प्रवेश किया तो उसका जी पहलेके-से उत्साहके साथ दरवाज़ों तथा खिड़कियोंपर पर्दे लगानेमें लग रहा हो, इसमें सन्देह है। सरलाकी वह कुतूहल-भरी दृष्टि जैसे उसके कलेजेको चीरकर कई पुरानी स्मृतियोंको खोज निकालनेका प्रयत्न करने लगी। वह चाहती है कि आँखकी झपकमें बीते जीवनके उन बहुत प्राचीन परन्तु मधुरतम क्षणोंकी यादको ताज़ा करे। किसी प्रकार बच्चे (मनोहर) के पिताकी मूर्ति अपने हृदय-पटलपर अंकित कर दे

आँसू बहाये, सास-ननदकी झिड़कियों और बोली-ठोलियोंको स्मरण कर जी भरकर रो ले और ज़रा इस बोझको, जो इस समय अकस्मात् ही उसके दिलपर आ पड़ा है, हल्का कर ले,—उतार दे।

किन्तु अतीतके जितने भी सुख-दुःख-भरे चित्र वह अपने मानसिक नेत्रोंके सम्मुख खींचना चाहती है, उतने ही वे छायाकी भाँति दूर भागते नजर आते हैं। उनके बदले उसके हृदयके कैमरेमें प्रतिबिम्बित हो जाती हैं कुछ और ही तसवीरें। पहले दिखाई देता है मिट्टीसे सना माँ-माँ करता हुआ एक छोटा-सा शिशु! उसके बाद आता है बरसातके किसी दिन पुस्तकें हाथमें दाबे भीगे वस्त्रोंसे घर लौटनेवाला एक बालक! और तब मानो उसे प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है आशाओंका प्रदीप वही तरुण मनोहर, आजका प्रोफेसर मनोहरलाल एम० ए०।

गंगा स्वयं ही अपनेको धिक्कारने लगी—अरे! क्या आज रोनेका दिन है? छी! और 'बच्चा' के कालेजसे लौटनेकी प्रतीक्षामें एक बार पुनः उसी उत्साहसे घरको सजाने लगी।

× × ×

इन थोड़े ही दिनोंमें प्रौढ़ा गंगा और नवयुवती सरलाकी परस्पर काफ़ी बनने लगी है। इस अनमेल जोड़ीकी मैत्रीका कारण केवल उदारचित्ता सरलाका दुखिया गंगाके वैधव्य-जीवनकी करुण कहानियोंद्वारा द्रवित होना ही न था, यदि केवल ऐसा,—इतना ही होता, तो हँसमुखी और चंचला सरला

दो ही दिनोंमें अपनी नई पड़ोसिनकी बातोंसे उकता जाती।

किन्तु असल बात तो यह है कि गंगाके जीवन-उद्यानमें आह्लाद और उल्लासका जो नन्हा-सा पौधा विकसित होनेके साथ ही साथ अकस्मात् एक भारी चट्टानके नीचे दबकर मूर्च्छित और अर्धमृत-सा हो गया था, वह बरसोंके बाद आज पुनः इस बेमौसममें,—इस वृद्धप्राय दशामें, अचानक लहलहाने लगा है। उसमें फिरसे जीवन और सुगन्धका समावेश हो गया है।

गंगाके मनकी चिर-संचित अभिलाषाएँ पुत्रके राज्यमें अपनी नवयुवती सहेली पड़ोसिनका सहयोग पाकर और भी अधिक उमंगोंके साथ जाग्रत हो उठी हैं। उसकी बड़ी बड़ी काली आँखें, जो भरी जवानीके मद-भरे दिनोंमें आठों पहर सजल रहा करती थीं, आज न केवल नये नये वस्त्राभूषणोंकी परखमें, अपितु शिक्षिता सरलाकी देखा-देखी कहानियोंकी नई नई पुस्तकोंके अवलोकनमें भी लगी रहती हैं। वह अब रामायण-महाभारतकी कथा-वार्ता छोड़कर 'कुमुदिनी', 'परिणीता', 'नवनिधि' आदिके पढ़नेका भी प्रयास करती है।

सरलाको गाने-बजानेका भी काफ़ी शौक है। सितार, हारमोनियम, ग्रामोफोन आदि उसके ड्राइंग-रूमकी शोभाके आवश्यक अङ्ग हैं। सो गंगाने भी अपने 'बच्चा'से कहकर ग्रामोफ़ोन मँगवा लिया है। जिस किसी दिन प्रभातके समय रसिक-हृदया सरला अपनी साससे सीखा हुआ ठेठ पंजाबी

गीत—'इहा वेरीके वतवी, वे घुमाईयाँ जोबना!' (ओ अलबेले यौवन! क्या यही बार है कि फिर भी कभी आओगे?) —करुण भैरवी स्वरमें अपना दिलरुबा लेकर गाने बैठ जाती है, तो उसी समय गंगा भी अपने नये ग्रामोफोनमें रेकार्ड चढ़ा देती है, "क्या कारण है अब रोनेका?"

और सरलाको इस बातमें बड़ा सुख अनुभव होता है कि गंगापर उसका काफी रौब है।

२

मनोहर बचपनहीसे कठोर नियन्त्रणमें पला है। उसके दादा उसे अपने समवयस्क लड़कोंके साथ खेल-तमाशोंमें जाने देना तो अलग रहा, उसकी बालोचित उछल-कूदको भी पसन्द नहीं करते थे। बड़े होनेके साथ ही साथ वह पिताके अभाव तथा माके परावलम्बी जीवनको दिल ही दिलमें अधिकाधिक अनुभव करता रहा है। आज भी मन ही मन उसे अपनी उस चतुरतापर आश्चर्य-मिश्रित हँसी हो आती है कि किस ख़ूबीके साथ वह दादीसे छीन-छानकर दूधका भरा हुआ गिलास ले लेता था और आधा पीकर बाकी 'जी नहीं है' कहकर माको जबरन पिला देता था। और भोजनके समय भी वह कैसी ज़िद पकड़ लिया करता था कि माके हाथसे ही खाऊँगा। दादी और माके बेतरह बौखलानेपर भी वह तभी भोजन करता था जब एक ग्रास उसकी मा खाये और एक ग्रास उसे मिले।

किशोरावस्थाके उन सुनहले दिनोंमें ही जब उसके अन्य

सहपाठी पढ़ाई समाप्त कर लेनेके बाद देश-विदेश घूमनेकी स्कीमें बनाया करते थे, मनोहरने अपने जीवनका एक ही ध्येय बना लिया था, और वह था किसी तरह माको पराधीनताके इस जीवनसे छुड़ाकर उसे सुखी बनाना। उसकी इसी दृढ़ लगनका यह परिणाम था कि आज एम० ए० पास करते ही मनोहरको प्रेसीडेन्सी कालेजमें प्रोफेसरी मिल गई है। और शायद यही कारण है कि उसका मन कालेजके अन्य प्रोफेसरों तथा विद्यार्थियोंके साथ हँसी-मज़ाक, या मनोविनोदमें अधिक नहीं लगता। उसका चित्त अधिकतर घरमें ही आलमारीमें रखी पुस्तकोंमें, अथवा माकी नई नई फ़रमाइशोंको पूरा करनेमें उलझा रहता है।

मनोहर यद्यपि माकी सभी आकांक्षाओंको पूरा करनेका भर-सक प्रयत्न करता है, और इसमें उसे बड़ा सुख अनुभव होता है; परन्तु जब कभी भूलसे अथवा कार्याधिक्यसे कोई वस्तु लानेमें दो-एक दिनकी देर भी कर देता है, तो गंगा एक मानिनी नवोढ़ा बहूके समान मुँह फुलाकर अपने कोप-भवनमें जा बैठती है। भोली गंगा! नहीं जानती कि वह महाकालके अमिट विधानसे अब तक जीवनके उस तीरपर आ पहुँची है जहाँ दुनियाकी निगाहमें उसका मान, गर्व या रौब उच्छृंखलता कहा जा सकता है। मगर मनोहर माके जीवनके साथ इतना घुल-मिल गया है कि वह माको थोड़ा और भी खिजाना चाहता है। उसके जीमें आता है कि वह माकी कोई किताब अथवा सीनेका सामान किसी ऐसी जगह

छिपा दे जिससे वह सारे दिन परेशान रहे; किन्तु पल-भरमें ही जब माकी वही सजल-नयना मलिन-वसना मूर्ति उसके मानस-नेत्रोंके सम्मुख आ जाती है, तो एक अबोध शिशुकी भाँति पीछेसे दौड़ा दौड़ा आकर 'मा ! मा !' कहता हुआ वह उससे लिपट जाता है।

उस समय गंगाके नारी-हृदयका स्वाभाविक अभिमान-रोष वात्सल्यकी नदीकी बाढ़से सारेका सारा बह जाता है,—घुल जाता है।

बन्धु-बान्धवोंसे बहुत दूर, इस बड़ी नगरीके एक कोनेमें, मा-पुत्र एक छोटी-सी नई गृहस्थी जुटाकर कभी आह्लाद, कभी उल्लास और कभी अभिमानके साथ दिन व्यतीत कर रहे हैं।

गंगाको न भूत-कालका दुःख सताता था और न भविष्यकी चिन्ता ही। वह अपनेको एक उच्च शिखरपर खड़ा पाती थी। वह अपने घरकी मालिकिन है; वह अपनी खुशीका खा सकती है, अपनी पसन्दका पहन सकती है। उसके इस अखंड राज्यमें अब कौन हस्तक्षेप कर सकता है?

और बच्चा? और बच्चा भी माकी इस स्नेहमयी छायामें अपूर्व शान्ति प्राप्त कर अपने जीवनको कृतकृत्य समझ रहा था। वे दोनों ही पुनीत प्रेमके इस अटूट बन्धनसे विलग नहीं होना चाहते थे। किन्तु इस मानवके कोमल हृत्पिण्डके भीतर कौन कौन-सी प्रवृत्तियाँ,—कैसे कैसे उपद्रवजनक विस्फोटक पदार्थ छिपे पड़े हैं, इसे कौन जानता है? कौन कह सकता है कि

वे किस समय अचानक उठ खड़े होंगे ? हम स्वयं ही नहीं जान पाते । यह कैसी विवशता है ! कैसी विडम्बना है !

*   *   *

क्रमशः शीतऋतु आ गई । ठंड अधिक पड़ने लगी । मनोहरने बड़े दिनोंकी सारी छुट्टियाँ कम्बल ओढ़कर बिस्तरपर औंधे पड़े पड़े ढेरों पुस्तकें पढ़नेमें ही गुज़ार दीं । परन्तु छुट्टियोंके अन्तिम दिन,—नये वर्षके प्रथम दिवसकी दोपहरको जब वह टालस्टायकी 'अन्ना कैरेनिना' समाप्त कर एक अँगड़ाई लेकर उठा, तो उसे अपने चारों ओर कुछ सूनापन-सा अनुभव होने लगा ।

बाहर हल्के-पीले घामने अनुपम लावण्य फैला रखा था, और आँगनमें गंगा चौकीपर बैठी अपने घने काले केश सुखा रही थी ।

मनोहर एक बार बाहर आया और उसके बाद उदासी-भरे मनसे भीतर लौट गया । माके साथ वह भला टालस्टायकी इस ऊँची साहित्यिक कल्पनाके सम्बन्धमें क्या बातचीत करे ? दोपहरीकी निस्तब्ध प्रकृति जैसे उसे अपने साथ एक करने लगी । अन्यमनस्क-सा हो वह अख़बारके पन्ने उलटने लगा । अचानक उसे एक नई बात सूझी । अख़बार हाथमें लिये वह माके पास आ खड़ा हुआ और बोला, "मा, चलो, आज तुम्हें सिनेमा ले चलें ।"

गंगा कुछ विस्मित-सी हो उठी । आज बच्चेको सिनेमाकी फुर्सत कहाँसे मिली है ? वह सरलासे 'पूरन भगत',

'चण्डीदास', 'राजरानी मीरा' आदि फिल्मोंका कथानक सुन चुकी थी, इसीलिए उसका मन भी इस अद्भुत करिश्मेको देखनेके लिए ललचा उठा; परन्तु फिर भी प्रकटमें उसने यही उत्तर दिया, "तुम जा आओ, भई! मुझे क्या समझमें आयेगा?"

"मा, दिन-रात तो तुम रामायण बाँचा करती हो, भला सीताकी कथा तुम्हारी समझमें न आयेगी?" मनोहरने आग्रहपूर्ण स्वरमें कहा।

उस रात जब मा और 'बच्चा' सिनेमासे लौटे, तो आकाश निर्मल था। केवल श्वेत बादलोंके कुछ छोटे छोटे टुकड़े पूर्ण-चन्द्रके आसपास छितराये हुए थे। तारागणका एक समूह सम्पूर्ण आकाशमें अप्रतिभ होकर फैला हुआ था।

कुछ देरतक अधखुली खिड़कीसे इस अलौकिक सौन्दर्यको निहार कर मनोहर कम्बल ओढ़कर सोनेका प्रयत्न करने लगा। अब प्राकृतिक और मानव दोनों चित्रपट उसकी दृष्टिसे ओझल थे; किन्तु अब भी बाकी थी उनकी छाया-सी : सिनेमा-हाल, दृश्य, धरती-माताके मुँह फाड़कर गानेपर गुप्त-परिवारका हँसी-विनोद। प्रो० गुप्त वास्तवमें सज्जन पुरुष हैं। कई बार वे कालेजमें उससे घर आनेका आग्रह कर चुके हैं। उनकी पत्नी भी बहुत मिलनसार और समझदार प्रतीत होती हैं। और मा भी क्या गजब करती हैं! राम-सीताकी तसवीरोंके आगे बार बार सर झुका देना क्या अन्ध-श्रद्धा नहीं है? वे लोग क्या कहते होंगे? मिस गुप्ता कैसी शिक्षित और सभ्य लड़की मालूम होती थी! कमल-विसर्जनका दृश्य

देखकर कैसी भावुकता उसके चेहरेसे टपकती थी! युवक मनोहरके हृदयमें सहसा एक स्वाभाविक तरुण-भावनाका सूत्रपात हुआ और न जाने वह इन संकल्पोंमें ही कहाँ तक उड़ता चला गया।

किन्तु जिस समय युवक मनोहर अपना एक नया संसार बसानेके सुख-स्वप्न देख रहा था, उसी समय सुनसान रात्रिमें गंगा राम-लीलाकी पुनीत कथाको थोड़ी ही देर पहले आँखोंके सामने प्रत्यक्ष देख चुकनेके कारण प्रेम और भक्तिके सागरमें हिलोरें ले रही थी।

अगले ही रविवारको मनोहर प्रोफेसर गुप्तके यहाँ चायके लिए निमन्त्रित था। संध्या होनेको आई; गंगाको कुछ भी पता न था। वह रूमालोंके किनारे मोड़नेमें ऐसी तल्लीन रही कि इतनी देरसे आनेका कारण बिना पूछे ही कोनेमें रंगीन फूल काढ़े हुए दो रूमाल और ताज़ी मिठाईकी तश्तरी लिये 'बच्चा' के सम्मुख आ खड़ी हुई।

मनोहर स्वयं ही कुछ झिझक कर बोला, "मा, यह क्या हो रहा था?"

"कुछ नहीं, बेटा! तुम कल रूमाल खोज रहे थे न? और यह गोलेकी बर्फी थोड़ी देर पहले ही बनाई है।"

और दिन होता तो मनोहर माके हाथोंकी कारीगरीकी न जाने कितनी प्रशंसा करता और जान-बूझकर कितनी ही त्रुटियाँ खोज निकालता; किन्तु वास्तवमें आज मनोहरको भूख न थी। कपड़े उतारते हुए रूमालोंकी ओर देखकर वह बोला,

"मा, क्यों तुम यों ही दिन-भर काम-काजमें लगी रहती हो? अब हम बच्चे थोड़े ही हैं?"

मनोहरने यद्यपि उपर्युक्त बात सरलतापूर्वक कही थी, किन्तु वह उस क्षण यह भूल गया था कि उसकी माका हृदय एक ऐसे तरल पदार्थसे भरा हुआ है जो जरा-सी भी ठेस पाकर छलक उठता है।

गंगा एक गहरी व्यथाको लेकर दूसरे कमरेमें भोजन परोसने चली गई।

३

वैशाख-संक्रान्तिके शुभ मुहूर्तमें प्रोफ़ेसर मनोहरलालकी सगाई कुमारी अमृतलता गुप्त बी० ए० से निश्चित हुई है। कन्या-पक्षवालोंकी ओरसे आज सगुन आया है। गंगाके घर सरलाके सहयोगसे दिन-भर गाना-बजाना होता रहा है। फल मिठाई इत्यादिसे आने-जानेवाली स्त्रियोंका यथेष्ट सत्कार होता रहा है। कन्याके विषयमें सरला सबको परिचय दे रही है। और गंगा? गंगाके जीवनमें इस शुभ घड़ीसे बढ़कर आह्लादका और कौन समय होगा? वह इस दिनपर क्यों न बलिहार जाय? जब एक छमछमाती नूपुर-ध्वनि उसके कानोंमें झंकृत होने लगती है, तो वह उछल पड़ती है।

काम-काजसे निपटकर गंगा ज़रा विश्राम करनेके लिए ऊपर खुली छतपर जा बैठी। सामने ही पीपलके हरे हरे पत्तोंकी ओटमें सूर्य अस्त हो रहा था। अन्तिम किरणोंसे आकाशके

बादल रंग-बिरंगे हो उठे थे। नगरमें शोर-गुल मचा था, मगर आसमान जैसे सन्नाटा खींचे चुपचाप खड़ा था।

गो-धूलिका समय है। दिन-भरके थके-माँदे लोग अपने अपने बसेरोंकी ओर लौट रहे हैं। सामनेके पीपलके पेड़पर सैकड़ों चिड़ियाँ एकसाथ कोलाहल कर रही हैं। पशुओंके झुंड बाँ-ाँ-ाँ-आँकी आवाज देते हुए किस आशासे भागते आ रहे हैं! गंगाकी आँखें इन सब दृश्योंकी ओर हैं; परन्तु उसका चित्त अभी तक अपनी भावी बहूके वस्त्राभूषणोंके चुनावमें ही लगा हुआ है: वह कौन कौनसे सुन्दर आभूषण और कैसी कैसी नई साड़ियाँ मँगवायेगी?

ज्यों ही सायंकालकी पीली छाया पश्चिम दिशामें विलीन हो गई, बादलोंके समूहकी सम्पूर्ण स्वर्णमयी आभा घने अन्धकारमें खो गई और क्रमशः पक्षियोंका कलरव भी सुनाई देना बन्द हो गया, त्यों ही गंगाका हृदय भी सहसा इस नीरव प्रकृतिके साथ साथ जैसे डूबने-सा लगा। उसमें भी जैसे अन्धकार-सा भरने लगा। बार बार उसके मनमें एक प्रश्न-सा उठने लगा 'यह सृष्टि इतनी सुन्दर होकर भी इतनी सूनी क्यों है?'

'बच्चा' कहता है, "मा, अब तुम्हें कुछ भी काम नहीं करना पड़ेगा। घरकी कोई चिन्ता न करनी होगी। खूब मज़ेसे तीर्थ-यात्रा करना।" दिनमें कई स्त्रियोंने भी उससे सहानुभूतिके शब्दोंमें कहा है, "बहन, तुम्हें अब गृहस्थीके धन्धोंसे क्या लेना है? आरामसे रामका भजन करना!"

हाँ, ठीक तो है ! मुझे अब इन धन्धोंसे क्या लेना है ! यह गाना-बजाना, यह सीना-पिरोना, यह सिनेमा-तमाशा, क्या मुझे शोभा देते हैं ?—वह फिर एकदम चौंक-सी पड़ी। अरे ! तो क्या मुझे 'बच्चा' की सम्पूर्ण चिन्ता, सम्पूर्ण देख-भाल एक नये व्यक्तिके हाथोंमें सौंप देनी होगी ? यहाँ तक कि उसके आने-जानेके समय गहरी उत्सुकता और अनन्य प्रतीक्षाका मेरा सम्पूर्ण अधिकार भी मुझसे छिन जायगा ? जिस नन्हें पौधेको वह लगातार बाईस वर्षोंसे बिना किसीकी सहायताके सींचती आई है, क्या आज एकाएक किसी कोनेमें बैठकर सिर्फ उसकी छायाका ही आनन्द उठाया करे ? गंगा सहसा सपना-सा देखने लगी।

करीब पचीस बरस पूर्व जब वह भोला-भाला मुँह लिये अपनी माकी गोदसे बिछुड़कर सखी-सहेलियोंको बिलखता हुआ छोड़कर ससुराल आई थी, तब क्यों न वह विधिका विधान जान सकी ? उस प्रभात-वेलामें बाल-रविकी भाँति हँसते हँसते किन किन उमंगों और कौन कौन-सी आशाओंको साथ लेकर उसने अपनी जीवन-नौका संसार-सागरमें छोड़ दी थी ? परन्तु उसके बाद अकस्मात् आकाश मेघाछन्न हो गया। सभी ओर घना अन्धकार छा गया। पथहीन राहीकी तरह वह भयभीत हो गई। काँप उठी। उसका कोमल हृदय सहसा चूर चूर हो गया। उसकी वह चपलता,—उसके हृदयका वह सारा उल्लास जैसे अचानक ही उससे छीन लिया गया।

परन्तु निराशाके उस गहरे तमोसागरमें भी आशाकी एक

हलकी-सी सुनहली किरण सहसा उसे मार्ग दिखाने लगी। प्रकाशकी उसी उज्ज्वल रेखाके सहारे उसने पुनः एक बार अपनी नैय्याको उस पार ले चलनेका निश्चय किया। विधिकी कृपा हुई और उसकी वह ज्योति क्रमशः अधिक अधिक उज्ज्वल होती गई, अँधेरा कम होता गया और आखिर एक समय आया जब उसका सूना हृदय एक बार फिर तरंगित हो उठा। उसमें नव-जीवन आ गया। हँसी-खुशी, आमोद-प्रमोद उसे फिरसे सुहाने लगे। सभी क्लेश-ताप उससे कोसों दूर भाग गये।

परन्तु हाय! बरसोंके बाद आज पुनः उसे अपने ऊपरका आकाश अन्धकारपूर्ण दिखाई देने लगा है। गंगाकी निगाह सहसा ऊपरकी ओर उठ गई, ऊपर गहरी अँधेरी रात थी। बादल छाये रहनेसे तारोंका भी निशान नहीं था। आसमानकी उस गहरी छायाके नीचे कलकत्ता नगरी अपने दीये बालकर पड़ी थी।

किन्तु इसी समय सचमुच ही क्षितिजमें एक ओर असंख्य तारागण झिलमिला उठे और उसी क्षण किसी सुदूर बैण्डकी मधुर ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। इसके साथ ही साथ सरलाके घरसे सितारकी ध्वनि भी झंकृत हो उठी।

सहसा गंगाकी आँखोंमें आँसू भर आये और उसके चेहरेपर मुसकराहट-सी छा गई। वह इस समय रोये या हँसे; इन चमकते तारोंको, संगीतकी इस मधुर ध्वनिको और अपनी सहेलीकी आह्लाद-भरी चहकको वह विधाताका प्रसाद मानकर

स्वीकार करे या इन्हें अपने लिए एक व्यंग-भरी विडम्बना माने ? गंगाको कुछ भी न सूझ पड़ा कि वह निराश हो जाय या आशासे भर उठे। सहसा उसके जीमें आया कि क्यों न वह अपने 'बच्चा' के सामने अपने जीका हर्ष और विषादसे भरा संगीत उन्मुक्त रूपसे प्रवाहित कर दे? परन्तु सगाईकी इस खुशीके अवसरपर उसका 'बच्चा' माके हृदयके इस गहरे द्वन्द्वको कहाँ समझ पायेगा !

अचानक गंगाको सूझ पड़ा : ओह ! यह तो उसके जीवनका संध्या-काल है ! तभी तो इसमें साँझका-सा मनोरम सौन्दर्य है और उसी जैसा करुण बिदाई-सा गहरा भाव।

गंगाकी आँखोंसे दो बूँद नीचेकी ओर ढुलक गये, और उसके अन्तःकरणको चीरती हुई एक गहरी साँस व्यक्त हो पड़ी।

इसी समय सीढ़ियोंपर किसीके चढ़नेकी-सी आवाज़ हुई। अगले ही क्षण दूरसे मनोहरने पुकारा, "मा!"

गंगाने साड़ीके आँचलसे अपना मुँह पोंछकर बहुत ही कोमल स्वरमें जवाब दिया, "बच्चा!"

गुलमर्ग १९३६

वे नग

नित्यकी भाँति न तो उस दिन प्राची दिशामें उषाकी लाली ही प्रस्फुटित हुई और न शुक्र तारा ही चमका। चारों ओर केवल श्वेत मेघावलियाँ बरसने लगीं। शीतकालकी-सी ठंडी पवन श्रावण मासमें मीठी लगने लगी।

बच्चे माँसे मीठी मीठी चीज़ोंकी फ़रमाइशें करने लगे और मैं अपना इसराज लेकर रामकलीकी गत बजाने लगा।

वर्षाका वेग जितना ही बढ़ता जाता था उतनी ही तीव्रतासे, उन्मत्त-सा हो मैं अपने इसराजपर गज़ फेरता था।

सहसा नेपथ्यमें बैंड बजनेकी ध्वनि सुनाई दी। मिठाईकी तश्तरियाँ वहीं मेज़पर छोड़कर बच्चे उछल कर बरामदेमें भाग गये।

दो बच्चोंका पिता बन जानेपर भी बचपनने मेरा साथ अभी नितान्त ही नहीं छोड़ दिया है। गतको बिना समाप्त किये, इसराज वहीं गलीचेपर रखकर मैं बाहर बाजा सुननेके लिए पहुँच गया।

एक विषाद-भरा चित्र! अत्यन्त करुण स्वरमें बजते हुए बैंडके पीछे किसी चीनी व्यक्तिकी अन्तिम यात्राका जुलूस! काली, सफेद झण्डियोंके साथ शीशेदार गाड़ीमें फूलोंसे ढका हुआ शव! और उसके पीछे धीमी चालसे मानो इंच गिनगिनकर बढ़ती हुई गाड़ीमें दुख, दर्द और पीड़ासे विह्वल एक चीनी महिला!—श्वेत संगमर्मरकी मूर्ति-सी अचल, जड़वत्! संसार जिसके लिए

उस घड़ी सुनसान, भयावना, प्रलय-सा हो रहा था।

न जाने वह उसका कौन था? मैं सोचने लगा।

पल-भरके लिए उस सिसकते चेहरेपरसे रूमाल हटा और दृष्टि ऊपरकी ओर उठी; मेरी खुली उत्सुकतापूर्ण आँखोंमें उन आँखोंकी समूची सिहरन-तड़पन-विकलता एक साथ मिलकर एक हो गई।

मेरा जी धक् धक् कर उठा, रोम रोम काँप उठा। अकस्मात् एक चीख़-सी निकल गई और उधर सिसकनेकी ध्वनि एक प्रबल बाढ़की भाँति दुगनी-चौगुनी हो उठी।

एक क्षण! बस एक ही क्षण! बाजोंकी ध्वनि दूर हो गई; गाड़ी उसी धीमी चालसे आगे बढ़ती गई। क्रमशः पीछेकी गाड़ियाँ, जिनमें कितने ही चीनी स्त्री-पुरुष बैठे हँस रहे थे, निकल गई।

बच्चे लौटकर पुनः अपनी अपनी मिठाईकी तश्तरियाँ साफ करने लगे। और मैं,—मैं भी अपनी भीगी आँखोंको पोंछकर इसराज उठाने लगा। किन्तु—

* * *

अब जब कभी वर्षाके दिन मुझे गाने-बजानेकी धुन सवार हो उठती है तो गति-हीन पुतलीकी-सी एकटक वे आँखें मेरे सामने छायाकी भाँति घूम जाती हैं, और मैं सोचने लगता हूँ, जीवनमें ऐसे कितने क्षण आया करते हैं—मूक! निःस्पन्द! भाषाहीन!

परन्तु नहीं, वह मेरी कौन थी? मुझे उससे क्या वास्ता?

कलकत्ता १९३७

एक सन्ध्या

ऐसे ही एक संध्या !

उस दिन शायद कोई त्यौहार था। मुझे बाज़ारसे बहुतसे घरके जरूरी सामान लानेके अतिरिक्त फ़रमाइशें भी पूरी करनी थीं कैलास, मोहनी और छोटे विनयकी !

मेरे कैलासको बिस्कुट बहुत भाते हैं—लिपटनके—

मोहनीको अच्छी लगती है पेस्ट्री और स्ट्राबेरीका जैम और छोटे बच्चे विनयको बस चाहिए केवल खिलौने—

× × ×

खाने-पीनेकी वस्तुएँ तथा वस्त्रों आदिके मोटे मोटे बंडल मैं ड्राइवरको सामने खड़ी मोटरमें रखनेके लिए देती जा रही थी।

अब सूचीमें केवल एक खिलौना, तीन ड्राइङ्ग पेन्सिल, चार रबर और कुछ कापियाँ शेष थीं। दूकानदार कहता जा रहा था, " मेम साहब, बच्चोंके लिए यह पेंसिलें अच्छी रहेंगीं। यह डबल लाइनकी कापी ठीक है, रंगकी डिबिया भी लेती जाइए। " इत्यादि

इसी समय एकदम अँधेरा छा गया। आसमान पहले लाल हुआ, फिर पीला और बादल घिर आए।

" आँ ! आँ ! आँ ! " एक करुण चीत्कार पृथ्वी तथा आकाशके मिले हुए क्षणिक सन्नाटेको पार करता हुआ मेरे अन्तस्तल तक आ पहुँचा ! " ताँगेके पहिएके नीचे लड़की दब गई, " दूकानदार बोल उठा।

तीन-चार मनचले राहगीर और सामनेके दूकानदार ताँगेवालेके स्वरमें एक साथ चिल्ला उठे ! " बच गई। बड़े कम्बख़्त पाजी होते हैं यह लोग ! अभी मर जाती ! "

ऐं ! वही अँगिया पहने फटे लहँगेवाली छोकरी ! शायद नेशनल बैंककी नई बनती हुई भव्य इमारतके नीचे सड़कपर गारा-मट्टी उठानेवाली मज़दूरिन जो फल और मिठाईवाली दूकानमें पीछे पीछे उचक उचककर इन अलब्ध पदार्थोंकी ओर देख रही थी और जिसको दूर करनेके लिए अभी अभी मैंने ड्राइवरसे कहा था !

अन्तःकरणमें न जाने क्यों एक प्रबल दैवी इच्छा उत्पन्न हुई। उसका क्रन्दन मुझे जाने क्यों अपने मोहनी-कैलासके रोनेकी भाँति लगा!—मनमें हो आया, उसे हृदयसे लगा लूँ, —उसकी समस्त पीड़ा अपनेमें कसकर समेट लूँ !

लेकिन भरे बाज़ारमें यह कैसे हो सकता था?—मेरी गुलाबी रेशमी साड़ी और शानदार जूतोंने मुझे अपने कुलका,—जातिका ध्यान दिलाकर उस समय द्विविधासे निकाल लिया,—खींच लिया। वह दरिद्रताकी मूर्ति निरीह मज़दूर बच्ची चीख़ती लँगड़ाती हुई बाज़ारमेंसे निकल गई।

आकाश काले काले मेघोंसे भर उठा है, चीलें मँडराने लगी हैं रह रहकर पूर्व-उत्तर दिशामें चमकनेवाली विद्युतको देखकर !

संसार इस अपूर्व छटाको निहारकर मुग्ध हो रहा है! किन्तु मेरे मनमें यह क्या कौंध रही है ?

इसी चमचमाती बिजलीकी नाईं वह एक संध्या !

मेरठ १९३८

क़ब्रिस्तानमें

रजिस्टरके पन्ने दो बार शुरूसे आखिर तक उलट-पुलटकर सफेद दाढ़ीवाले बूढ़े माली जार्जने अस्वीकृतिसूचक सिर हिलाते हुए उत्तर दिया, "चार्ल्स नामका कोई भी व्यक्ति पिछले बारह महीनोंमें इस पैसेनडेल क़ब्रिस्तानमें नहीं दफ़नाया गया है," तो लोहेके बड़े फाटकके सहारे खड़ी युवती स्टैलाका मुख तुरन्त सफ़ेद पड़ गया।

करीब दस मिनट तक संज्ञाहीन-सी टूटी लताकी भाँति फाटकके जँगलेके साथ ही वह चिपटी रही; किन्तु एकाएक उसके निश्चेष्ट मस्तिष्कमें क्या आया?—उस मीलों लम्बी विस्तृत भूमिके बीचों-बीच जहाँ दिन-रात प्रलयका-सा भयावना सन्नाटा छाया रहता है, निर्भयतापूर्वक तेज़ीसे कदम बढ़ाते हुए वह घुस गई। प्रत्येक क़ब्रपरके शिला-लेखकी ओर एक भेद-भरी दृष्टि डालते हुए वह आगे बढ़ने लगी। उसे अभी तक यह सम्भावना थी कि मालीकी किताबमें भूलसे चार्ल्सका नाम दर्ज़ होनेसे रह गया है।

स्टैलाको बिलकुल अकेले क़ब्रिस्तानकी भीतरी चारदीवारीमें इधर उधर अकुलाते हुए भटकते देख बूढ़े जार्जका हृदय भी उस बीस-पचीस वर्षकी कच्ची कली-सी अल्हड़ युवतीके प्रति पसीज उठा। उसे स्मरण हो आया कि पिछले कई वर्षोंसे लगातार सुन्दर घुँघराले बालोंवाली यह रमणी एक भूरी

आँखोंवाले बलिष्ठ युवकके साथ किसी बन्धुकी समाधिपर फूल चढ़ाने आया करती थी।

नवयुवकके बारेमें जार्जने जो कुछ कल्पना की, वह यूरोपीय महायुद्धके उन विनाशकारी दिनोंमें कोई असाधारण बात न थी। पोलेगोनका हरा भरा फलों-फूलोंसे लदा जंगल उसके सामने ही काट-छाँटकर कई क़ब्रिस्तानोंके रूपमें बनाया गया था। फ्लैण्डर्सकी विगत घनघोर लड़ाईमें काम आए हुए हज़ारों लहूलुहान योद्धाओंको तो वह अपने हाथों ही दफ़ना चुका है; हज़ारों माताओं, बहनों और विधवाओंको अपने पति, पुत्रों और भाइयोंकी समाधियोंपर बिलखते देखनेका मानो वह अभ्यस्त हो गया है।

तो भी बूढ़े मालीके मनमें हो आया, क्यों न वह स्टैलाके पास जाकर उसकी इस व्यर्थकी छान-बीनपर खेद प्रकाशित करे? किन्तु गुलाबके लाल लाल फूलों तथा भाँति भाँतिकी नीली-पीली बेल-पत्तियोंसे मानव-देहोंको प्रतिदिन ढकनेवाले पैसेनडेल क़ब्रिस्तानके प्रत्येक मालीपर यह प्रतिबन्ध लगाया गया है कि वह किसी भी दर्शकको, स्त्री हो या पुरुष, इस विस्तृत चारदीवारीके भीतर नितान्त खुला छोड़ दे, जिससे आगन्तुक व्यक्तिको अपने मृत बन्धुओंके प्रति भाव प्रदर्शन करनेमें किसी प्रकारकी असुविधा न हो।

२

वसन्तकी एक सुहावनी दुपहरियाके समय चार्ल्स और स्टैलाने जब परस्पर एक-दूसरेको भावी जीवन-संगी चुना था

तब विवाहके उपरान्त समस्त यूरोपके प्राकृतिक दृश्योंके भ्रमण आदिकी न जाने कितनी बड़ी बड़ी योजनाएँ बना डाली थीं उन्होंने वहीं टेम्स नदीके किनारे बैठे बैठे एक ही घड़ीमें !

तभी समस्त यूरोपके शासक-वर्गमें भीतर ही भीतर नर-संहारी काण्डकी जो भीषण खूनी प्यास खौल रही थी उससे सर्वथा अपरिचित सुकुमार हरिण-सी यह जोड़ी पीठपर झोला लादे इंग्लैण्डके वन-उपवनोंमें एक साथ फूल-पत्तियाँ बटोरती रहती। ऐसा कोई झंझावात,—कोई तूफान अकस्मात् आ घिरेगा जो इन एक डंठलमें गुँथे दो पुष्पोंको जहाँ तहाँ झटक-पटक देगा, यह प्रणय-रसमें विभोर स्टैला और चार्ल्स नहीं जानते थे।

इन दोनोंके विवाहकी तिथि गत क्रिसमससे पूर्व नवम्बर मासमें निश्चित हुई थी। सहसा स्टैलाके मधुर स्वप्नोंपर तुषारपात हो गया, उसका नन्हा-सा कोमल हृदय छिन्न-भिन्न हो गया।—बारह मास पूर्व आजके ही दिनसे चार्ल्सका कुछ पता न था।

स्टैला और उसके कई-एक बन्धुओंके प्रायः सभी विशेष सरकारी दफ्तरोंमें अच्छी तरह जाँच करनेपर भी जब यही निराशापूर्ण उत्तर मिला कि चार्ल्सका क्या हुआ, पता नहीं चलता, तो अभागी युवतीको विवश होकर स्वीकार करना ही पड़ा कि उसका प्रियतम,—उसका प्यारा चार्ल्स युद्धमें वीर-गतिको प्राप्त हुआ है !

३

अन्तस्तलमें दहकती ज्वालाकी लपटें और ऊपरसे जुलाई मासकी दोपहरीकी तीक्ष्ण धूप ! कोमलांगी स्टैलाका तन-बदन

पिघलने-सा लगा। पसीनेसे तर शिलालेखों, संगमरमर-निर्मित समाधियोंको देखती-खोजती वह न जाने बागके किस छोर तक पहुँच गई; किन्तु कहीं भी किसी भी शिलापर चार्ल्सका नाम नहीं !

हा ! आज आँसू बहानेके लिए भी वह प्रियके मज़ारको न पा सकी ! स्टैला रेतपर पड़ी मछलीकी भाँति तिलमिला उठी—चार्ल्स ! चार्ल्स !—उसकी व्यथा-भरी चीखोंकी प्रतिध्वनि की उन अनेकों सुरक्षित हड्डियोंके ढेरोंने !

दुःखकी पराकाष्ठामें भी मनुष्यकी अन्तरात्मा उसे सर्वदा विश्रामकी ओर,—शान्तिकी ओर ही प्रेरित करती है। गर्मी तथा शोकसे सन्तप्त विह्वल स्टैला तनिक क़ब्रिस्तानकी पार्श्ववर्ती सीमाके एक ओर हरी-घनी झाड़ीके समीप जा पहुँची। शीतल वायुके एक झोंकेने जैसे उसके दुखके प्रबल वेगमें क्षणिक बाँध-सा लगा दिया। माथेका पसीना पोंछकर वह ज्यों ही खड़ी हुई, उसकी दृष्टि उसी झाड़ीके ऐन नीचेकी क़ब्रपरके शिलालेखपर जा पड़ी जो साधारण लाल ईंटोंसे बनी थी।

"महासमर (फ्लैण्डर्स) में वीर-गतिको प्राप्त हुए एक अज्ञात युवक सैनिककी स्मृतिमें।"

इसी वर्ष ! बिना नामका युवक सैनिक और कौन हो सकता है ? स्टैला बरबस उन लाल पत्थरोंसे चिपट गई ! रोते रोते उसका वक्षस्थल भीग उठा !

४

स्टैलाका जीवन अब एक सती-साध्वी नारीका एकरस

जीवन था जिसे शीतकी मधुरता, वसन्तका सौरभ और ग्रीष्मकी मनोहारिणी संध्या नहीं सुहाती। सैकड़ों लम्बी लम्बी रातें तारे गिनते, अनेकों लम्बे लम्बे दिवस निःश्वास भरते लंडन नगरके एक कोनेमें चुपचाप कट जाते; किन्तु जुलाई मासके प्रारम्भमें ही न जाने कहाँसे एक अद्भुत शक्ति-सी उस भग्न-हृदयामें संचारित हो उठती।

इंग्लिश चैनेलको पार कर प्रतिवर्ष १५ जुलाईके दिन स्टैला शुभ्र वस्त्र धारण किए अपने इच्छित स्थानपर सबेरे ही जा पहुँचती। पैसेनडेल ही अब स्टैलाकी दृष्टिमें सबसे बड़ा तीर्थ-स्थान था।

सारा दिन उस लाल ईंटोंसे बनी क़ब्रके सिरहाने गुज़ारती, भाँति भाँतिके गुलदस्तोंसे उसे सजाती, परिक्रमा करती और फिर बैठकर पुरानी स्मृतियोंको स्वयं ही दुहराती। उस घड़ी चार्ल्स मानो स्टैलाके सम्मुख जीवित हो उठता। उसके इस कोमल स्पर्शको पाकर वह जड़ समाधि भी न जाने कितनी पुलकित होती!

साँझ होनेको आती। सूर्यकी अन्तिम किरणें बेल-पत्तियों-फूलोंपर चमकने लगतीं तो स्टैला चौंक पड़ती; सजल नयनोंसे वह अन्तिम बार समाधिकी ओर देखते हुए एक करुण गान गाकर बिदा लेती जिसका भावार्थ कविके शब्दोंमें निम्न लिखित है:

अब छलकत दिन-रैना सजनी!
कासों बिथा कहिए मोरी सजनी!

जल बरसे हिय-आग बुझे ना
अब सपना-सी भई खेलत उलट दई ।

विरहिणीकी दशापर बूढ़े माली जार्जकी आँखोंसे भी आँसू ढुलक जाते ।

५

पूरे पाँच वर्ष बीत गए ।

इस बार स्टैलाने जी खोलकर श्वेत कमल और लिल (नर्गिस) के फूल मँगाए । १४ जुलाईका सारा दिन वह ब परिश्रमसे कमल-फूलोंके चक्र तथा लिलीके गुलदस्ते बनाने लवलीन रही ।

संध्याको बिजलीके प्रकाशमें अगले दिन प्रातः पहनक जानेवाली पोशाकपर स्टैला इस्त्री कर रही थी, इसी सम पड़ोसका लड़का बिली एक पीले रंगका लम्बा-सा लिफ़ाफ फेंककर भाग गया । "मिस स्टैला विन्डसन"....

"नहीं! नहीं! यह कभी नहीं। यह कैसे हो सकता है?' स्टैला चीखती हुई उन श्वेत कोमल पुष्पोंपर मूर्च्छित हो गि पड़ी । और फूल मानो शर्मिन्दा होकर जहाँ तहाँ कमरे बिखर गए ।

× × ×

यह एक विश्वस्त सरकारी सूचना थी कि चार्ल्स जीवित है । महायुद्धमें एक भयंकर आघात लगनेपर उसक स्मरण-शक्ति विनष्ट हो गई थी । इसके बाद वह आस्ट्रेलिया भेज दिया गया । चार वर्ष बाद अब उसे लंडनके

मेण्टल हास्पिटलमें इलाजके लिए भेजा गया और कुछ ही मास पूर्व उसका आपरेशन हुआ है जिससे चार्ल्सकी स्मरण-शक्ति पुनः लौट आई है।

यद्यपि अभी वह दुर्बल है, किन्तु स्टैलाकी याद दिन-रात बराबर किया करता है।

६

माली जार्ज एक दिन आश्चर्यान्वित हो भयभीत-सा हो उठा, मानो वह कोई स्वप्न अथवा भूत-प्रेतोंका खेल देख रहा हो।

गर्म वस्त्रोंमें लिपटे वही प्रेमी-युगल फूल लिये फाटकके बाहर खड़े थे; किन्तु आज स्त्रीके मुखपर झुर्रियाँ और पुरुषके बालोंमें सफ़ेदी आ गई थी।

× × ×

सदाकी भाँति स्टैला और चार्ल्स प्रतिवर्ष अपने बन्धुकी समाधिपर स्नेहांजलि प्रदर्शित करने जाते हैं; किन्तु उस बेनाम कब्रके चारों ओर कोई नहीं मँडराता,—फूल चढ़ाने कोई भी नहीं आता। *

कलकत्ता १९३७

* 'हिन्दू' में प्रकाशित एक सच्ची घटनाके आधारपर।

भाई-बहन

"माजी !....हाय ! माजी !....हाय.! " एक बार, दो बार; पर तीसरी बार 'हाय ! हाय !' की करुण पुकार सावित्री सहन न कर सकी। कारबन-पेपर और डिज़ाइनकी कापी वहीं कुर्सीपर पटक कर शीघ्र ही उसने बाथ-रूमके दरवाज़ेके बाहर खड़े कमलको गोदमें उठा लिया और पुचकारते हुए कहा, "बच्चे, सबेरे सबेरे नहीं रोते।"

"तो निर्मला मेरा गाना क्यों गाती है, और उसने मेरी सारी कमीज़ क्यों छींटे डालकर गीली कर दी है ?"

स्नानागारमें अभी तक पतली-सी आवाज़में निर्मला गुनगुना रही थी, " एक....लड़का....था....वह रोता....रहता...."

"बड़ी दुष्ट लड़की है। नहाकर बाहर निकले तो सही, ऐसा पीटूँ कि वह भी जाने। " मासे यह आश्वासन पाकर कमल कपड़े बदलने चला गया।

न जाने कितनी मंगल कामनाओं, भावनाओं और आशीर्वादोंको लेकर सावित्रीने अपने भाईके जन्म-दिनपर उपहार भेजनेके लिए एक श्वेत रेशमी कपड़ेपर तितलीका सुन्दर डिज़ाइन खींचा है। हल्के नीले, सुनहरे और गहरे लाल रंगके रेशमके तारोंके साथ ही साथ जाने कितनी ही मीठी स्मृतियाँ भी उसके अन्तस्तलमें उठ उठ कर बिंधी-सी जा रही हैं, और अनेक वन, पर्वत, नदी, नाले तथा मैदानके पार

दूरसे एक मुखाकृति बार बार नेत्रोंके सम्मुख आकर उसके रोम रोमको पुलकित कर रही है। कभी ऐसा भी लगने लगता है, मानो सामने दीवारपर लटकी हुई नरेन्द्रकी तसवीर हँसकर बोल उठेगी। सावित्रीकी आँखोंमें प्रेमाश्रु छलक उठे। तितलीका एक पंख काढ़ा जा चुका है; किन्तु दूसरा आरम्भ करनेसे पूर्व ही कमलकी सिसकियों और आँसुओंने सावित्रीको वहाँसे उठनेको विवश कर दिया।

स्कूलकी चीज़ोंको बेगमें डालते हुए निर्मलाके निकट खड़े होकर सावित्रीने कड़क कर कहा, "निर्मल, तुझे शर्म नहीं आती क्या? इतनी बड़ी हो गई है! कमल तुझसे पूरे चार वर्ष छोटा है। किसी चीज़को उसे छूने तक नहीं देती। हर घड़ी वह बेचारा रोता रहता है। अगर उसने तेरे पेन्सिल-बक्सको तनिक देख लिया, तो क्या हुआ?"

निर्मला सिर नीचा किये मुसकरा रही थी। यह देखकर सावित्रीका पारा और भी अधिक चढ़ गया। उसने ऊँचे स्वरमें कहना शुरू किया, "रानीजी, बड़े होनेपर पता चलेगा, जब इन्हीं दुर्लभ सूरतोंको देखनेके लिए भी तरसोगी। भाई-बहन सदा साथ साथ नहीं रहते।"

माकी झिड़कियोंने बालिकाके नन्हें मस्तिष्कको एक उलझनमें डाल दिया। आश्चर्यान्वित हो वह केवल माके क्रुद्ध चेहरेकी ओर एक स्थिर, गम्भीर, कुतूहलपूर्ण दृष्टि डालकर रह गई।

क़रीब आध घंटा बाद किंचित् उदास-सा मुख लिये निर्मला जब कमलको साथ लेकर स्कूल चली गई, तब सावित्रीको

अपनी सारी वक्तृता सारहीन प्रतीत होने लगी। सहसा उसे याद आने लगी कुछ वर्ष पूर्वकी एक बात। तब वह नरेन्द्रसे क्यों रूठ गई थी? छिः! एक तुच्छ-सी बातपर····किन्तु आज जो बात तुच्छ जान पड़ती है, उन दिनों उसी तुच्छ, निकृष्ट, ज़रा-सी बातने इतना उग्र रूप क्यों धारण कर लिया था, जिसके कारण भाई-बहनने आपसमें पूरे एक महीने तक एक बात भी न की थी! एकाएक सावित्रीके चेहरेपर हँसी प्रस्फुटित हो उठी, जब उसे स्मरण हो आया नरेन्द्रका दिन-रात नये नये रिकार्ड लाकर ग्रामोफोनपर बजाना और एक दोस्तसे दूरबीन माँगकर आते-जाते बहनके कमरेकी ओर झाँकना कि किसी तरह इन दोनों चीज़ोंका प्रभाव सावित्रीपर पड़ रहा है या नहीं! उसे यह भी याद करके ख़ूब हँसी आई कि कैसे वह मौन धारण किये हुए मिठाईकी तश्तरी नरेन्द्रके कमरेमें रख आती थी।

* * *

टेबिल-क्लाथ पुनः हाथमें लेकर काढ़ते हुए सावित्रीने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि अबसे वह बच्चोंको बिलकुल डाँट-फटकार नहीं बतायेगी; किन्तु इधर बारह बजेकी आधी छुट्टीमें खानेके समय फिर कई अभियोग कमलकी ओरसे मौजूद थे—"निर्मला मुझे अपने साथ साथ नहीं चलने देती, पीछे छोड़ आती है। 'मन्दाकिनीर पूर्ण धाराये' के बदले 'कमलकिनीर पूर्ण धाराये' गाना गाती है और गधा कहती है।"

मामला कुछ गम्भीर न था; और दिन होता, तो शायद

निर्मलाकी इन शरारतोंको सावित्री हँसी समझकर टाल देती; परन्तु यह उद्दण्ड लड़की सबेरेसे ही उसके प्रिय तथा आवश्यक कार्यमें बार बार बाधा डाल रही है ! एक हल्की चपत निर्मलाके लगाते हुए माने डाँटकर कहा, " बस, कल ही स्कूलसे तेरा नाम कटवा दिया जायगा। यह सब अँगरेज़ी स्कूलकी शिक्षाका ही नतीजा है। जरा-सी लड़कीने घर-भरमें आफ़त मचा रखी है। अभीसे भाई-बहनोंकी शकल-सूरत नहीं भाती, बड़ी होनेपर न जाने क्या क्या करेगी। " फिर थालीमें पूरी-तरकारी डालकर बच्चोंके आगे रखते हुए ज़रा धीमे स्वरमें कहा, " देखो निर्मला, जब मैं तुम्हारे बराबरकी थी, तो अपने भाई-बहनोंको कभी तंग नहीं करती थी, कभी अपने माता-पिताको दुःख नहीं देती थी। " किन्तु यह बात कहते हुए भीतर ही भीतर सावित्रीको कुछ झिझक-सी हो आई।

* * *

" हम दोनों सीताके घरसे जुलूस देखेंगे मा, अच्छा। " —कमलने विनम्र स्वरमें अनुमति चाही।

" नहीं जी, क्या अपने घरसे दिखाई नहीं पड़ता ? " दरवाज़ेकी ओटमें निर्मला खड़ी थी। " कैसी चालाक लड़की है—इसी ग़रीबको आगे करती है, जब खुद कुछ कहना होता है। जाओ, जाना हो तो। " सावित्रीने झुँझलाकर उत्तर दिया।

पाँच बजे मुहर्रमका जुलूस निकलनेवाला था। पल-भरमें चौराहेपर सैकड़ों मनुष्योंकी भीड़ इकट्ठी हो गई। सावित्रीका

ध्यान कभी काले-हरे रंग-बिरंगे वस्त्र पहने जन-समूहकी ओर और कभी जुलूसके कारण रुकी हुई मोटर-गाड़ियोंमें बैठे हुए व्यक्तियोंकी ओर अनायास ही खिंच रहा था। और इधर बालिका निर्मलाके होश हवाश एकाएक गुमसे हो गये जब उसे सारे घरमें कमलकी परछाईं तक नज़र न आई। व्याकुल-सी हो, वह एक कमरेसे दूसरेमें और फिर बरामदेमें पंखहीन पक्षीकी नाईं फड़फड़ाती हुई दौड़ने लगी। उसकी आँखोंके आगे अँधेरा-सा छा गया। उसे सब कुछ सुनसान-सा प्रतीत होने लगा। वह मासे कई बार छोटे बच्चोंके भीड़-भाड़में खो जानेका हाल सुन चुकी है। आह....उसका भैया... कमल ....वह क्या करे?

नीचेकी सड़कपर भाँति भाँतिके रंग-बिरंगे खिलौने, नये नये ढंगके गुब्बारे, कागज़के पंखे, पतंग और भिन्न भिन्न प्रकारके सुर निकलते हुए बाजे लाकर बेचनेवालोंने बाल-जगतके प्रति एक सम्मोहन जाल-सा बिछा रखा है। कुछ दूरसे मानो नेपथ्यमेंसे ढमाढम ढमाढम ढोल-बाजोंकी ध्वनि बढ़ती आ रही है। निर्मला इन सब चित्ताकर्षक चीज़ोंको बिना देखे-सुने ही भीड़-भाड़को चीरती हुई वेगपूर्वक भागती भागती सीताके घर भी हो आई; पर कमल तो वहाँ भी नहीं है! रोते रोते निर्मलाकी आँखें सूज आईं; चेहरेका रंग सफ़ेद पड़ गया। आख़िर वह हिचकियाँ लेते हुए रुँधे गलेसे माके पास जाकर बोली, "कमल....कमल तो सीताके घर भी नहीं है!"

सावित्रीका तन-बदन एक बार सहसा काँप उठा। क्षण-भरमें भीड़, मोटर और गाड़ियोंके भयसे कई अनिष्ट आशंकाएँ उसकी आँखोंके आगे घूम-सी गईं; किन्तु वह अपने भीरु लड़केकी नस-नससे परिचित थी। उसे पूरा विश्वास था कि कमल ज़रूर ही कहीं न कहीं किसी दूकानपर खड़ा होकर अथवा किसी नौकरके साथ जुलूस देख रहा होगा; फिर भी उसने फूट-फूटकर रोती हुई निर्मलाको हृदयसे नहीं लगाया और न उसे धीरज ही बँधाया, बल्कि आश्चर्यचकित-सी हो, आश्वासनका एक शब्द तक कहे बिना मानो वह अपनी लड़कीकी रुलाईको समझनेका प्रयत्न कर रही थी। रह-रहकर एक सन्देह-सा उसके मनमें उठने लगा, 'मुझसे भी अधिक—भला माके दिलसे भी ज्यादा—किसी औरको दर्द-चिन्ता हो सकती है? और यह निर्मला तो दिन-रात कमलको सताया करती है!"

जुलूस समाप्त हो गया। क्रमशः दर्शकोंके झुण्ड भी छिन्न-भिन्न होने लगे। मोटर-गाड़ियोंका धड़ाधड़ आना-जाना पूर्ववत् जारी हो गया। और सामने ही फुटपाथपर सफेद निकर और सफेद कमीज़ पहने पड़ोसी डाक्टर साहबके नौकरके हाथमें हाथ लटकाये कमलकिशोर घर आता हुआ दिखाई दिया।

× × ×

सीढ़ियोंमेंसे फिर सिसकनेकी आवाज़ सुनकर सावित्रीने देखा तो मन्त्रमुग्ध-सी रह गई। कमलको दृढ़-पाशमें बाँधे

निर्मला दुगने वेगसे रो रही है। उसके कोमल गुलाबी गाल मोटे मोटे आँसुओंसे भीगे जा रहे हैं और वह बार बार कमलका मुख चूम चूमकर कह रही है, " पगले ! तू कहाँ चला गया था ? गधे ! तू क्यों चला गया था ? "

सावित्रीका हृदय उमड़ आया, पुनीत प्रेमके इस दृश्यको देखकर एक आनन्दकी धारा-सी उसके अन्तस्तलमें बहने लगी। झरते हुए आँसुओंके साथ उसने कमलकी जगह निर्मलाको छातीसे लगाकर उसका मुँह चूम लिया और कहा, "बेटा, बहनको प्यार करो। देखो, वह तुम्हारी ख़ातिर कितना रोई है। तुम बिना कहे क्यों चले जाते हो ?"

निर्मलाका इतना आदर होते देख कमल बोल उठा, " तो क्या मैं वहाँ नहीं रोया था ?"

" तुम क्यों राये थे जी ?"—माने कुतूहलवश पूछा।

" मुझे गुब्बारा लेना था, पैसा नहीं था। "

निर्मलाने दौड़कर अपनी जमा की हुई चवन्नीके पैसोंसे दो गुब्बारे और दो कागज़के खिलौने कमलको लाकर दिये और एक बार फिर उसे भुजाओंमें जकड़कर कहा, " गधे ! तू चला क्यों गया था ? "

कलकत्ता १९३७

बेकारीमें

पूरा एक वर्ष !

एक वर्षसे मैं बेकार घर बैठा हूँ । सिरपर पाँच पाँच बच्चोंकी पढ़ाई-लिखाई, रोटी-पानीका खर्च—कब तक यह बची-बचाई जमा पूँजी चलेगी !

ओफ ! कभी कभी तो अत्यन्त निराश हो उठता हूँ। जीवनसे ऊबनेपर कितने ही बुरे विचार आने लगते हैं; किन्तु बच्चों और स्त्रीकी निस्सहाय अवस्थाका ध्यान करके रुक जाता हूँ।

* * *

कल दोपहरको 'मार्टन कम्पनी'से एक चिट्ठी भी आ गई कि दो मास बाद आपके प्रार्थना-पत्र पर ध्यान दिया जायगा।

मन ही मन पी गया । क्या मुँह लेकर बच्चोंकी माँके पास जाऊँ ? वह देखते ही प्रश्न करेगी, बच्चे दौड़े आवेंगे और उनके नन्हें दिल टूट जावेंगे । मैंने जो उन्हें कबसे बँगला, मोटर आदिकी आशा बँधा रखी है !

चिट्ठी जेबमें रख सीधा बाथ-रूममें जा पहुँचा, और वहाँ फूट-फूटकर रोया अपने भाग्यपर । मुझे वह दिन याद आए जब आफ़िसमें कुर्सीपर बैठा चपरासियों और क्लार्कोंपर हुकूमत चलाता; घरमें नित्य मिठाई-फलोंके टोकरोंकी धूम रहा करती ! क्या वे दिन अब नहीं आनेके ? जी चाहता था, अपने

कलेजेका दर्द, अपना रुदन सारे विश्वमें फैला दूँ—मुझ-सा कौन दुखी है जगतमें ?

* * *

शायद आध घंटा बीत चुका, जब मैंने बाहर निकलकर अपनी सूजी हुई आँखोंसे देखा, जल्लो मेहतरानी अपनी गोदके बच्चेको वहीं ज़मीनपर बैठाकर मैला साफ़ करने जा रही है। जाने क्यों मैं अपनेसे झेंप-सा गया और अनायास ही रूमालसे मुँह पोंछते हुए पूछ बैठा, "जल्लो, तनख़ाह मिल गई ?"

उसके हाथमें चमकता हुआ एक रुपया था जिसको दस बार माथेसे छुआकर कहा, "जीते रहो बाबूजी,—बच्चे बने रहें बाबूजी !"

उस घड़ी मुझे उससे बातें करना सुहाने लगा। मैंने फिर पूछा, "कितने रुपए हो जाते होंगे ?"

"भगवान बनाये रखे बाबूजी ! छः-सात रुपए बन ही जाते हैं बाबूजी, और कुछ कपड़े-लत्ते....माँजी बहुत परवरिश करती हैं। अब यह बात है बाबूजी, ग़रीब मानस कभी राँधें, कभी न राँधें।"—उसने ऊपर निगाह करके कहा। तभी मैंने देखा, जल्लोकी दोनों आँखोंमें बदबूके मारे फुन्सियाँ निकल रही हैं।

मैंने एक बार पुनः सिरसे पैर तक उस मलिनताकी पुतलीको देखा—अत्यन्त मैली ओढ़नीसे ढका जिस्म और जगह-जगहसे फटी सलवारको पतली रस्सीसे कसकर बँधीं टाँगें !

एक हाथसे झाड़ू पकड़े वह कहती गई, "दो पैसे रोज़के

पड़े बाबूजी, कोठड़ीका भाडा दो रुपया और बाकी बनियाके देनेमें कट जाते हैं। बनियाका सौ रुपया देना है। मेरे मालिकने दो भैंसे खरीदे थे मैलेवाली गाड़ीमें जोतनेको, सो दोनों मर गए। कुछ परके साल बच्चोंकी बीमारीमें खर्च हो गये बाबूजी, बड़े बच्चे दोनों मर गए!"

लापरवाहीके साथ वह एक साँसमें ही सब कह गई और पुनः घूँघट नीचा करके उसी एक रुपयेको बच्चेके माथेसे लगा, हज़ारों दुआएँ देती, काममें लग गई।

मेरे शोकाकुल नेत्रोंमें उसकी जीवन-गाथा समा गई और आँसुओंका बाँध फिर एकबारगी टूट पड़ा। भगवान्! सहिष्णुता और सब्रका गठ-बन्धन तुमने दरिद्रताके साथ ही जोड़ रखा है क्या?

मेरठ, १९३८

हसन

एक युग-सा बीत गया, जब बालक हसन रोहतीके इर्द-गिर्द चक्कर काटता फिरता और नाजसे भरपूर ऊखल और छाजमें मुट्ठियाँ भर-भरकर मिट्टी और कंकड़ डालकर व्यर्थ ही माको परेशान किया करता। वे दिन भी तो न जाने किस अदृश्य पर्देमें छिप गये, जब हसन गाँवके आवारा लड़कोंके संग दिन-भर निठल्ला-सा घूमा करता। शहतूत और गिलासके पेड़ोंपर हर घड़ी लटके रहना और बार बार धड़ामसे नदीके शान्त जलमें कूद पड़ना! बस, केवल यही उसकी दिनचर्या थी, भले ही क्यों न उसके पीछे पीछे रोहती 'हसन हसन' कहकर चिल्लाती फिरे।

सचमुच उसके बाद तो हसन बहुत ही बिगड़ गया था। शीतकाल आनेसे कुछ पहले जब उसकी मा, बहन, भौजाई आदि सब धान समेटने, सूखे पत्ते और गोबर एकट्ठा करनेमें लगी होतीं, तो बेहया हसन उस समय केसरके नीले-पीले सुरभित खेतोंके समीप अपने बेकार दोस्तोंकी टोलीमें बैठा ताश खेलता होता, अथवा कभी अपनी छोटी भतीजी आशीको पीठपर लादे मस्त घूमता रहता।

आखिर कब तक रोहती यह सहन करती कि उसका एक बेटा तो बूढ़े बापके साथ खेती-बारीमें पसीना बहाकर काम करे और दूसरा घर बैठा मौज उड़ाये। भला, वह कब

तक अपने बीस वर्षके जवान बेटेको साँड़-सा निकम्मा घूमने देती और कितने दिनों तक उसके इन अपराधोंको बचपनकी गुस्ताखी समझकर क्षम्य मानती रहती। घरके दूसरे लोग हसनकी इन करतूतोंपर विशेष ध्यान न देते थे, क्योंकि रोहती खुद ही अपने बेटेके निकम्मेपनसे शर्मिन्दा होकर उसे आवश्यकतासे अधिक डाँट-फटकार बतलाती रहती थी। कभी कभी तो छड़ीसे पीटने तककी भी नौबत आ चुकी थी।

जब वही निकम्मा हसन एक शान्त प्रभात बेलामें एकाएक केवल एक कम्बल साथ लेकर काम करनेके इरादेसे सचमुच ही घरसे चल दिया, तो उसकी माँ संज्ञाहीन-सी हो गई और भीतर ही भीतर उसका कलेजा काँप उठा। इस बीचमें कितने ही सुहावने वसन्त आये, लाल-पीले और सफेद फूलोंसे झरते पेड़ों-तले सारे गाँवने मंगलोत्सव मनाये। गर्मीके दिनोंमें जब हसनकी उम्रके नटखट बच्चे फलोंके बोझसे झुके हुए वृक्षोंपर ऊधम मचाते अथवा नदीके शीतल जलमें छपाछप छपाछप कोलाहल करते या पतझड़के दिनोंमें जब भारी भारी चूड़ियोंकी झनकारके साथ सुर मिलाकर धान कूटती हुई ग्राम-वधुओंके आसपास उनके बालक मुर्गीके बच्चोंके साथ क्रीड़ा कर रहे होते, तो एक टूटी-फूटी चटाईपर नाजकी रखवाली करती हुई हसनकी माँ उनींदी-सी दशामें अनेक स्वप्न देखा करती। रह-रहकर हसनकी वे शरारतें, उनपर उसका वह गाली-गलौज, वह मार-पीट—ये सब स्मृतियाँ उसके हृदयको चलनी बनाया करतीं। वियोगकी घड़ियोंने

हसनको माँकी दृष्टिमें इतना अधिक प्रिय बना दिया कि वह नित्य ही सामनेके धूलि-धूसरित पथपर अपने प्रवासी बेटेकी बाट जोहा करती—एक बार ! केवल एक बार यदि उसका बच्चा घर आ जाता !

यह संसार दूरसे इतना सुहावना, इतना कोमल और इतना सरस क्यों जान पड़ता है ? जो नहीं है, उसे ही पानेकी प्रबल आकांक्षा मनुष्यको हर घड़ी क्यों घेरे रहती है ? मानवकी यह मृगतृष्णा क्या दयनीय नहीं है ?

२

ऊँचे-नीचे अनेक बीहड़ जंगलोंको पार करती हुई मोटर बस किसी असीम अजगरके समान लेटी हुई जम्मू-काश्मीर-वैली रोडपर भागी चली जा रही है। घनघोर गर्जन करती हुई बर्फ़ीली नदी चन्द्रभागाके आरपार दोनों ओर ऊँची ऊँची निस्तब्ध पर्वतश्रेणियाँ फैली हुई हैं जिनका मानो न कहीं आदि है, न अन्त। ये पर्वतश्रेणियाँ इस समय ग्रीष्मऋतुकी तीक्ष्ण धूपसे तप रही हैं। मीलों तक जो गहरा सन्नाटा छाया रहता है, उसके बाद कभी पहाड़ी चरवाहे, कोई राहगीर अथवा किसी जंगली पशु-पक्षीकी छाया-सी नज़र आती है, या कभी घंटोंके पीछे इधर उधरसे कोई दूसरी गाड़ी धूलके अम्बार उड़ाती भों भों करती निकल जाती है। पेट्रोलकी गन्ध, स्थानकी कमी और दोपहरीकी गर्मीके मारे पिछली सीटोंके व्याकुल यात्री ऊँघ-ऊँघकर एक दूसरेके कन्धों-पर गिर रहे हैं।

एक ही झपकमें हसनको ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह पुनः लाहौरकी दूकानपर बैठा लोहा तोल रहा है, गर्म लूकी लपटें उसके समस्त शरीरको झुलसा रही हैं, प्यासके मारे गला सूखा जा रहा है और उधरसे मालिक आवाज़ें दे रहे हैं, 'ओ हसन ! जाओ स्टेशनपर, माल आया है, बिल्टी छुड़ा लाओ ! '....साँझ होनेको है, दूकानके अन्य नौकर-चाकर प्रसन्नचित्त, लम्बे लम्बे डग भरते, सड़कके जन-समूहको चीरकर उतावलेपनसे अपने घरोंकी ओर बढ़े जा रहे हैं। और हसन ! उसे छुट्टी कहाँ है ! उसे तो अभी मालिकके घर जाकर गौओंका चारा तैयार करना है, मकानकी सफ़ाई करनी है, और भी न जाने क्या क्या करना है। हसन नींदमें बड़बड़ा उठा, 'या ख़ुदा ! रहम कर !' इसी समय एक झटके-से अचानक उसकी आँख खुली, तो उसे यह जानकर परम सन्तोष हुआ कि वह सब एक स्वप्न ही था। वास्तवमें बात यह थी कि मुसाफ़िर लोग ड्राइवरको मोटरकी छतपर मछलियोंकी पेटी लाद लेनेपर बुरा-भला कह रहे थे। किन्तु हसनके मनमें तो आज उल्लास है। बरसोंके बाद घर लौटनेके कारण उसका चित्त आह्लादित हो रहा है, उसे क्योंकर आज गर्मी-सर्दी, स्थानाभाव, दुर्गन्ध आदि अखरे! उसे तो यात्रियोंकी बौखलाहटपर आश्चर्य हो रहा है।

अनेक चक्कर काटती हुई मोटर-बस एक लम्बी सुरंगको पार करके पीरपाँचाल पर्वतके उच्च शिखरपर रुकी और ठंडी हवाके झोंकोंके कारण सब यात्री अपने अपने गरम कपड़े

खोज-खोजकर ऊपर लेने लगे। हसन इस अवकाशमें गाड़ीके नीचे उतरकर सुरंगसे कुछ ही कदमकी दूरीपर खड़ा हो सामनेकी ओर आँखें फाड़फाड़कर देखने लगा। वह वैरीनाग, वह मार्तण्ड, वह अच्छावल! नील नभोमण्डलके नीचे, छोटी छोटी पर्वतमालाओंके विस्तृत घेरेमें, दूर तक फैली हुई काश्मीरकी हरी-भरी घाटी, स्थान-स्थानपर दुग्धफेन-सी धवल जल-धाराएँ फेंकते हुए झरने, नदी-नाले, कमल-दलोंसे पूरित सरोवर, धूपमें लहलहाते हुए धानके खेत। अहा! यही है उसका प्यारा देश! अपनी जन्मभूमिका इतना मनोमोहक सौन्दर्य देख हसन मुग्ध हो उठा। इसी समय सेल्फको दबाते हुए ड्राइवरने एक ऊँची आवाजमें कहा, 'चल ओए! कशमीरिआ चलसें के नई?'

बस फिरसे उसी तीव्र गतिसे आगे बढ़ने लगी और ज्यों-ज्यों एक एक करके मील कटने लगे, हसनकी आँखोंके आगे नंग-धड़ंग बच्चोंका उछलना, ग्रामीण कन्याओंका गीत गाना आदि मनोमोहक चित्र खिंचने लगे। उसका चित्त खुशीके मारे नाचने लगा। जब वह घर पहुँचा, तो पाम्पुर गाँवके लकड़ीके कच्चे मकानोंकी घास-फूस ऊगी छतोंकी ओटमें सूर्यकी अन्तिम किरणें आलोकित हो रही थीं।

× ·|· ×

इन पाँच वर्षोंके व्यवधानमें ही इस छोटे-से गाँवकी बाहरी-भीतरी अवस्थाओंमें कितना भारी अन्तर हो गया है! नदीके इस पार पुलके समीप एक हिन्दू नानबाई और दो-तीन

सब्ज़ी-फ़रोशोंकी दूकानोंके बदले आज एक ख़ासा लम्बा बाज़ार-सा बन गया है। सड़कके आसपास उस खुले मैदानमें, जहाँ आजसे पाँच साल पहले ग्रामीण बच्चे अपनी भेड़-बकरियोंको खुला छोड़कर मस्त लोटा करते थे, आज तीन इमारतें खड़ी हैं : कचहरी, डाकघर और स्कूल।

इधर मुहल्लेमें भी वह चहल-पहल नहीं रही। सुभाना और सदीका शहरमें रेशमखानेके कुलियोंमें भरती हो गये हैं और आधु, रमज़ाना, गुफ़ारा आदि पिछले दिनों हैज़ेके आक्रमणमें चल बसे हैं। यही नहीं, स्वयं हसनके पिताका देहान्त हुए भी आज दो वर्ष हो चुके हैं। उसकी गैरहाज़िरीमें उसकी बहनकी शादी हो गई है, और अब वह अवन्तीपुरमें अपने बच्चों और पतिके साथ रहती है। इधर घरकी प्रत्येक वस्तुपर उसकी भौजाईका अधिकार हो गया है, और उसकी माँको चायकी एक प्याली भी भौजाईकी अनुमति लेकर ही मयस्सर हो सकती है। हसनकी छोटी भतीजी आशी और भतीजा अहमद इतने बड़े हो गये हैं कि अपने चचाके पास आनेमें भी सकुचाते हैं।

हसनने घर आते ही यह सब देखा-सुना, तो उसका चित्त उद्विग्न-सा हो उठा। पहले ही दिन जब वह दोपहरमें गाँवका चक्कर लगाने गया, तो समूचे गाँवमें उसे कोई भी ऐसा हार्दिक मित्र दिखाई न पड़ा जो उसके आगमनपर आनन्दोल्लाससे खिल उठता। बाज़ारके सब लोग अपने अपने कारोबारमें व्यस्त थे। लड़कोंके स्कूल, कचहरी, डाकघरमें

एक विचित्र प्रकारकी भिनभिनाहट-सी हो रही थी। लौटते समय जब वह नीले-सफेद फूलोंसे ढके कब्रिस्तानकी ओरसे गुज़रा, तो उसे अपने पिताकी और पुराने संगी-साथियोंकी याद रह-रहकर सताने लगी। हसनका सम्पूर्ण भूतकाल मानों इसी कब्रिस्तानमें मिट्टीकी मोटी तहके नीचे छिपा पड़ा था। जब और कहीं जी न लगा, तो व्यथितचित्त हसन फिर एक चादर ओढ़ उसी पूर्व परिचित घरमें अजनबीकी भाँति एक कोनेमे पड़ रहा।

किन्तु उसी सायंकालको हसनने देखा कि पूर्ण चन्द्रकी ज्योत्स्नामें जहाँ-तहाँ खिली पुष्प-लताएँ, नदीका जल, उस पारके खेत सब चमक उठे हैं। पक्षियोंके कलरव और ग्राम-कन्याओंके गीतोंने मिलकर चारों ओर एक जीवित गूँज-सी फैला दी है। मनचले युवक बच्चे नदीमें छलाँगें मार रहे हैं, जगह जगह ताश और शतरंजकी टोलियाँ जुटने लगी हैं। यह सब देखकर सहसा तरुण हसनका हृदय भर उठा; वह चाहे तो अब भी इस नई दुनियाके साथ नये सिरेसे अपनी जगह बना सकता है।

३

रोहतीके बड़े बेटे अलियाने साँझको घर लौटकर अपनी स्त्री और बच्चोंके सामने ही अपनी माँको व्यंगपूर्वक यह सूचना दी कि हसन छुट्टी लेकर घर नहीं आया, बल्कि वह तो नौकरी छोड़कर भाग आया है। इस समाचारकी सत्यता सिद्ध करते हुए जब उसने कहा कि मैं यह बात अभी अभी सुबरा

क्लीनरसे सुनकर आया हूँ, तो रोहती हतप्रभ-सी होकर एकटक देखने लगी। उसकी आँखें शर्मके मारे मानो गड़-सी गईं। इसके दूसरे ही दिन जब पड़ोसिन जैनीने मानो सहानुभूतिके शब्दोंमें रोहतीको सुझाया कि हसनका इस तरह मुहल्लेकी वधुओं और कन्याओंके पास हर घड़ी बैठे रहना उचित नहीं, मर्दबच्चेको ये बातें शोभा नहीं देतीं और जब उसी रात अहमदने आकर अपनी दादीसे कहा कि बड़ी अम्मा, क्यों नहीं हसन काका अपना नाम सड़क मरम्मत करनेवाले या फूल चुननेवाले कुलियोंमें दर्ज करा लेते, तो ये सब बातें वृद्धा रोहतीके अन्तस्तलमें शूलकी भाँति चुभ गईं। उसके जीमें हो आया—हाय! कहाँ है वह घड़ी, जिस रात एकाएक हसनने घर आकर माको अचम्भित कर दिया था; और वह भीगे हुए वक्षःस्थलसे, बढ़कर परिपक्क हुए उस मास-पिंडको विलग नहीं करना चाहती थी। किस गर्वके साथ उसने न केवल घरमें, बल्कि गाँव-भरमें यह समाचार सुनाया था कि अब उसके हसनकी गिनती कोई ऐरे-गैरे व्यक्तियोंमें नहीं हो सकती, क्योंकि वह तो अब एक बड़े नगरमें एक बड़ी दूकानका कारिन्दा है।

४

थोड़े समयके भीतर ही हसन फिर गाँवके उन छोटे नन्हें बच्चोंसे लेकर शतरंज खेलनेवाले बड़े-बूढ़ों तकका मित्र बन गया। यही नहीं, मुहल्लेमें नाईकी बहू, शमशुद्दीन बढ़ईकी लड़की और खैरीकी माको यदि बाज़ारसे नमक-तेलसे लेकर

कंघी-सुरमे तककी आवश्यकता पड़ती है, तो हसन हाज़िर होता है।

कच्चे-पक्के सेब, नाशपातियों, सूखे बादाम और खुरमानिओंसे उसके लम्बे कुर्तेकी जेबें मुहल्लेके बच्चोंमें बाँटनेके लिए सदा भरी रहती हैं। वह इसमें गर्व अनुभव करने लगा है; किन्तु वह यह नहीं जान सका कि उसे अब भी निकम्मा-निठल्ला नामोंसे क्यों पुकारा जाता है और घरमें घुसते ही उसकी माँका उसपर रोषपूर्ण व्यवहार क्योंकर है?

श्रावण, भादों, आसोज बीत गये। कार्तिक मासके आरम्भ होते ही चिनार, सफेदेके वृक्षोंकी घनी हरियाली क्रमशः लाल सुनहरे रंगके सूखे पत्तोंके ढेरोंमें परिवर्तित हो गई। उत्तरीय पर्वतोंकी ओरसे एक वेगवती ठंडी हवा बहने लगी। पतझड़के इन उदासीभरे दिनोंमें जब समूची घाटी अपना सम्पूर्ण शृंगार उतारकर विरहिणीकी भाँति बैठ गई तो पाम्पुरकी उस उजड़ी भूमिमें फिर नवयौवन उमड़ पड़ा, मीलों तक फैले हुए रंग-विरंगे केसरके फूल अपनी अपरिमित सुगन्धि लुटाने लगे।

तीन दिन तक दोपहरीमें गीत गा-गाकर फूलोंकी चुनाईमें काम करनेवाले कुलियोंके साथ काम करनेमें तो हसनको विशेष आनन्द मिला; किन्तु चौथे दिन ही फूलोंकी टोकरी वहीं फेंक वह उसी शतरंजकी टोलीमें जा बैठा। उसकी माँके कानोंमें यह खबर उस समय पहुँचाई गई जब कि वह मुहल्लेकी औरतोंके साथ धान समेटते हुए हसनके विवाह आदिकी बातचीत कर रही थी। सब एक साथ हँस पड़ीं;

किन्तु उस समय किसीको इस बातका ख़याल भी न आया कि इस हँसीका कितना भीषण परिणाम हो सकता है।

रोहती भागकर गई और शतरंजके खिलाड़ियोंके सामने ही अपने जवान बेटेके पास खड़े होकर उसने दोनों हाथ अपने माथेमें ज़ोरसे दे मारे और चिल्लाकर कहा, 'कमबख़्त, तू किस घड़ीमें पैदा हुआ था? तू लौटकर यहाँ आया ही क्यों?' और फिर वह विह्वल होकर रो पड़ी।

माँका यह रुद्र रूप देखकर हसन सिहर उठा, उसका तन-बदन एकबारगी काँप गया। ओह! क्या सचमुच ही पिछले पाँच वर्षोंके प्रवासमें वह इसी मृगतृष्णा-सी स्नेह-सुधाकी चाहमें व्याकुल बना हुआ था? इसी समय उसे लाहौरकी दूकानका ख़याल हो आया। वह क्यों न जाकर माफ़ी माँग ले! इसके साथ ही क्षण-भरमें उसे अपना समूचा जीवन निकृष्ट और अपमानित-सा लगने लगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब बुलबुलें और अन्य पक्षी अपने मधुर स्वरसे शीतऋतुके आगमनकी सूचना दे रहें थे, हसन चुपचाप अपने वतनसे अलग हो गया—डाल वृक्षसे कट गई।

× × ×

'लाहौर मेटल मार्ट' पर काम करनेवाले पीछे रखे गये कितने ही मुलाज़िम आज उच्चपद प्राप्त कर चुके हैं; किन्तु हसनअली आज भी दस वर्ष पहलेकी भाँति दिनमें लोहा तोलने और साँझको घरका काम करनेपर नियुक्त है। रातको जब लारी-ड्राइवर बहुत देर तक नानवाईकी दूकानपर ताश

खेलते हुए देश-विदेश एवं घर-बाहर हो आनेकी बड़ी बड़ी डींगें हाँका करते हैं, तो वह झुँझलाकर उठ खड़ा होता है और अपनी उसी आनन्दविहीन कोठरीमें, जहाँ उसके यौवनकी स्मृतियाँ भस्मके रूपमें बिखरी पड़ी हैं, रात-भर दुबका हुआ-सा पड़ा रहता है, और कभी कभी उन्हीं केसरके खेतों और उन्हीं पाम्पुर-निवासियोंको याद करके काश्मीरी भाषामें एक गीत गुनगुनाया करता है जिसका अर्थ शायद यही है—

"बुलबुलने आशियाना, चमनसे लिया हटा।"

सुर मानो पसलियोंसे निकलता है।

कलकत्ता, १९३७

डायरीसे

एक तेज़ धाराकी तरह जीवन बहा चला जा रहा है। कितने भँवर आये, कितनी लहरें उठीं, अनेक ही बार ज्वालामुखीके समान लपटें भी उठीं और भभक कर रह गईं। सैकड़ों बार ज्वार-भाटा उठा और साँसोंमें ही ख़त्म हो गया। अब रह गए हैं केवल इस हाड़ माँसके ढाँचेमें अरमान और अरमानोंमें केवल धुँआ-सा।

× × × ×

पढ़ो मत, लिखो मत, डाक्टरका कहना है, दिमाग़का काम मत करो। करीब दो मास पूर्वसे अपने मित्र करतारके यहाँ नई कोठीमें हवा बदलने आया हूँ। तकिया लेकर सामनेके लानमें पड़ा रहा हूँ। जब मैं यहाँ आया था, सामनेके पेड़ पतझड़के दिनोंमें रुंडमुंड थे। पहले दिन आते ही मैंने सोचा था—उस सामनेके सूखे पेड़को अंकित करना....किन्तु....

* * * *

आज इन सब अहातेके अन्दर और बाहरके वृक्षोंपर नयी नयी कोपलें फूट रही हैं, अहातेकी चार-दीवारी चैतकी हरी-पीली फूल-पत्तियोंसे ढँक गई है; पेड़ोंपर तोते, मैना, गरुड़ और जैतकी कच्ची टहनियोंमें बुलबुलें आनन्दोन्मत्त हो झूलने लगी हैं। ताजी हरी घासमें एक अनोखी सुगन्ध आने लगी है।

वसन्ती हवाके झोंकेसे जैतकी लम्बी पतली घनी टहनियाँ जिस अदासे ऊपर नीचे तक हिलती हैं, जाने क्यों मेरे अन्तस्तलमें उठने लगती है वैसे ही एक लहर-सी !

समाचारपत्र उठा एक ओरको पटककर अपनेको ही कोसने लगता हूँ ! "मूढ़, मूर्ख, तेरी ज़िन्दगी ! एक दिन तूने क़सम खाई थी, व्रत लिया था ! झूठे !—निकम्मे ! "

नहीं, नहीं, अपने विषयमें कुछ नहीं कहूँगा, "जो सदा ही अपने विषयमें कहता, सोचता है, वह शैतान है।"

"तो तुम क्या कर सके ?" स्मृति खींच लाती है कई चित्र !

+ × +

उस भव्य नगरीमें उन ऊँची गगनचुम्बी अट्टालिकाओंके नीचे हज़ारों लाखों कुलियोंकी, कोलतारसे पुती गर्म सड़कोंपर रिक्शा खींचते हुए, वर्षासे भीगी पटरियोंपर जाड़के दिनोंमें शीतसे सिकुड़े हुए उन गृहहीन परिवारोंकी—हा कितनी बार तड़प-सी उठी थी उसी सभ्य नगरके एक कोनेवाली गलीमें वह रोमांचकारी दृश्य देखकर !

एक अत्यन्त गन्दे स्थानमें जहाँ नीचे गीली भूमिमें तो चमड़ेका काम होता है और ऊपर टीनकी छतसे लटकी हुई खाटोंपर खाटें हिंडोलेकी भाँति....जिनमें उसी शहरका थका माँदा एवं भूखा प्यासा मज़दूरपेशा भाग विश्राम लेता है।

× × ×

तैरने-सी लगती है वह एक रात ! एस्प्लेनेड मैदानमें परल,

और स्टेच्यूके पास बैठा हुआ 'फ़ोर्ट विलियम' को देख मन ही मन हँस रहा था; मुझे याद आ रही थी बचपनकी एक बात जब (सम्राट् एडवर्डके मरनेपर) स्कूलमें बड़ी शानके साथ मैंने गाया था, "झुक गया है आज क्यों फ़ोर्ट विलियम झंडा तेरा।"

कैसे मनहूस थे तब हम और कितने बेख़बर!

इसी समय रेड रोडके पारसे कराहनेकी आवाज़ सुनाई दी....जब तक मैं सड़क पार करूँ, कितनी नए ढँगकी मोटर गाड़ियाँ सर सर करती हुई निकल गईं।

२० वर्षका युवक एक ओर धूलमें पड़ा हुआ हाथ पटक पटक कर शून्यकी ओर देखता हुआ पुनः कराह उठा—

"काम चाहिए!—काम चाहिए! करीब दो माससे 'स्टीम नैवीगेशन' से काम छूट गया है, खाना नहीं मिलता है। बेहोश हो जाता हूँ।—रेडक्रासवाले अस्पताल छोड़ आते हैं, अस्पतालवाले होशमें आनेपर सड़कपर छोड़ देते हैं।"

उस नवयुवकके धँसे हुए गाल, भयावनी आँखें, रूखे बाल, बाहर निकले हुए दाँतोंवाली आकृतिकी छाया मुझे जैसे डराने लगती है!

मेरा हृदय ग्लानिसे भर उठा है।—क्यों? मैंने एक चवन्नी देकर टाल दिया था!

× × ×

शुरू शुरूमें जब कलकत्ता गया था तब वह विराट् सफ़ेद इमारत बन रही थी, जिसमें आज रातके १२ बजे तक

रँगरेलियाँ होती हैं, बैण्ड बजता है, काली सफ़ेद झिलमिल करती हुई पोशाकोंमें संग-मरमरकी सीढ़ियोंपर चकाचौंध फैलाती हुई वे भाग्यशाली जोड़ियाँ किस शानसे आती-जाती हैं ! और किस ललचाई निगाहसे नीचे सड़क पारकर जन-समूह सतृष्ण नेत्रोंसे देखा करता है ! हाँ ! मैं भूल गया ।

तो उसी इमारतपर मैंने पहले देखा था, ऊँची ऊँची लोहेकी बल्लियोंको उठाते और पसीनेसे तर उस मानव-मूर्तिको बेहोश होते हुए । और तभी,—दूसरे दिन अख़बारके एक कोनेमें वहीं दो कुलियोंके दबकर मर जानेका समाचार देखा था ।

उसी ग्रैण्ड होटलके सामनेकी सड़कपर, प्रातःकाल पौ फटते ही मैंने देखा है, ऊँचे कूड़ेके ढेरमेंसे बासी सूखी रोटियाँ, मिठाइयोंकी जूठन, मक्खन, जैमके डिब्बोंको खोज खोजकर चाटते हुए उन नर-कंकालोंको ! मानव रूपमें गिद्धोंको !

देखा है, वहीं सन्ध्याके समय उसी होटलके पार्श्ववर्ती हज़ारों बत्तियोंसे जगमगाते बृहत् सिनेमा-हालके नीचे शाही शानसे सजी सजाई मोटरोंमें बैठे रईसों, सेठों और प्रभुओंको, किस अदासे सुनहरी वर्दीवाले दरबान हाथका सहारा देते हुए धीरेसे इन्हें ले जाते हैं ! मैंने सुना है,—अनेक बार कलेजा थाम कर, उसी स्थानपर बाहर सड़कपरके नलसे बच्चोंको नहलाती हुई मजदूरिनोंको दरबानसे गालियाँ एवं मारपीट खाते हुए । क्यों वह इस सभ्य स्थानमें अपनी नग्नताको लेकर आई ?

× × ×

"ओह ! क्यों मैं आँखें मूँदकर स्वप्न देखता रहता हूँ ? उन रिक्शा-कुलियोंसे, उस बेकार युवकसे, उन गृह-विहीन भूखे प्यासे कंकालोंसे मुझे सहानुभूति क्यों ?"

समाचारपत्रका वह पन्ना हवासे उड़कर दूर जैतके पेड़ोंके पास जा पहुँचा है जिसमें मोटे मोटे अक्षरोंमें एक जुलूसका वृत्तान्त छपा है। जुलूसका नायक है सतीश !—मेरा मित्र सतीश जिसके साथ आजसे कई वर्ष पूर्व मैंने प्रतिज्ञा ली थी,—व्रत लिया था !—सतीश आज किसानों, मज़दूरों, गरीबोंका नेतृत्व कर रहा है। दुनिया उसपर फूल बरसाती है। और मैं दीन दुनियासे पिछड़ा हुआ जीव कलेजा थाम थामकर इस दर्दको सहता हूँ ! मेरा खून क्यों पानी बन गया है ? क्यों नहीं मेरे अन्दर ही अन्दर उठनेवाली ज्वाला भक कर फूट पड़ती ?"

"तो मैं भी उसी कलका एक पुर्जा हूँ न जो क्रूर हाथों द्वारा ज़बरन चलाई जा रही है ? मेरी जेबमें अभी तक पड़ी है वह चिट्ठी !—उस चिट्ठीके वे पैने अक्षर मेरे हृदयको बेध रहे हैं। काम-काजमें बच्चोंका, परिवारका कुछ ख़्याल नहीं किया जाता।"

हा ! यह उत्तर था मेरे मालिक,—मेरे जीवन-दाताका जो कि मेरे पाँच वर्षसे बिछुड़े परिवारसे मिलने जानेकी छुट्टीके सम्बन्धमें अनुमति माँगनेपर आया था....।

दिल्ली, १९३८

श्यामा

मोहन भी तब सौन्दर्यके उन अनोखे प्रेमी पुजारियोंमेंसे एक था जो इस सम्पूर्ण विश्वकी अनन्त विभूतियोंमेंसे मनचाही वस्तुएँ एकत्र कर उन्हें अपने ईंट-पत्थरके सीमित घेरे (जिन्हें हम लोग 'घर' कहते हैं) के भीतर ही सजाकर हरघड़ी उन्हींकी शोभा देखते रहना ही अपना एक-मात्र ध्येय समझते हैं।

किसी विशाल उद्यानमेंसे छाँट छाँट कर लाये गये नन्हें नन्हें कोमल पौधे जब उसके घरके छोटे-से आँगनमें कतारमें रखे हुए मिट्टीके गमलोंमें भीनी भीनी महकवाले रंग-बिरंगे फूल देने लगते, तो मोहन आतुर होकर उन सुन्दर पुष्पोंको भरी जवानीमें ही निष्ठुरताके साथ हरे डंठलसे तोड़ लेता और अपने ड्राइंग-रूमके ऐन बीचमें रखी हुई श्वेत संगमरमरकी गोल मेज़पर चमकते हुए फूलदानमें ला रखता और इस तरह परम सुख अनुभव करता।

प्रातः-सायं इस खुले व्योममें बिना रोक-टोकके पंख फैलाकर स्वतन्त्रताके गीत गाते हुए पक्षियोंका कलरव उसे एक बार ऐसा आकर्षक जान पड़ा कि जब तक उसने नीले पंखों और सुनहली गर्दनवाली एक अबोध चिड़ियाको हर समय उसकी चहचहाहट सुननेके लिए पिंजरेमें डालकर अपने घरके बरामदेमें लटका न लिया, तब तक उसे चैन न मिली।

शायद मोहन नहीं जानना चाहता था कि वे सुन्दर फूल हरे डंठलके साथ दो दिन और भी टिके रह सकते हैं, और वह नन्हीं चिड़िया मुक्त वायुमंडलमें बिना किसी प्रतिबन्धके छोटे छोटे पंख फैला और भी सुरीली रागिनी गा सकती है। सौन्दर्यका उपासक मोहन सम्भवतः अपनी इसी स्वच्छन्द प्रकृतिके कारण ही जब कालेजकी पढ़ाई समाप्त करके एक बड़े शहरमें अच्छी जगह मिल जानेकी खुशीमें पहाड़ चला गया था, तब, अपने शहरकी कई अप-टू-डेट पढ़ी-लिखी कन्याओंके प्रस्तावोंको बीचमें ही छोड़ उस सुदूर पार्वत्य प्रदेशके किसी छोटेसे गाँवकी एक असंस्कृत गँवार-सी परन्तु सुन्दरतर और हृष्ट-पुष्ट बालिकाको, न जाने उसकी किस अदापर रीझकर, अपनी चिर-संगिनी बना लाया था।

एक निर्मल झरनेके समीप ही पहाड़ी खेतोंमेंसे रंग-बिरंगे जंगली फूलोंका छोटा-सा गुलदस्ता बनाकर वह नीचे सड़कपर आ-जा रहे यात्रियोंको देनेके लिए प्रतिदिन आया करती थी तब मोहन उन निर्जीव फूलोंसे कहीं अधिक सुन्दर उस सजीव गुलाबी फूलकी किसी चंचल मुस्कराहटपर ललच उठा था, अथवा यौवन-वसन्तके मदमाते दिनोंमें यह भोली ग्रामीण बालिका श्यामा स्वयं ही उस जालमें आ फँसी थी, यह एक विवादास्पद प्रश्न है।

जो कुछ भी हो, अब मोहन श्यामाको घड़ी-भरके लिए भी आँखोंसे ओझल करना नहीं चाहता था। वह उसके लम्बे ऊँचे कद, श्वेत गुलाबी कोमल चेहरेपरकी बड़ी बड़ी काली

लजीली आँखोंपर जी-जानसे फ़िदा था। वह दिन-भर श्यामाके रूपकी प्रशंसाके पुल बाँधा करता, "हे दिव्यरूपिणि, तुम किस लोकसे यह अतुल रूप-वैभव लेकर उतरी हो? तुम्हारे मधुर कण्ठसे निकली सुरीली आवाज़ने, तुम्हारे सुन्दर नयनोंके कटाक्षने और तुम्हारे भोले-भाले मुखपरकी चंचल मुस्कराहटने मुझे मोहित कर लिया है।" फिर वह मन ही मन जैसे गर्वके साथ कह उठता, "भला, ऐसा अलौकिक रूप और ऐसा स्वस्थ बदन कहीं शहरोंमें दृष्टिगोचर होता है?" वह अपने सौभाग्यपर फूला न समाता था।

सीमान्त-प्रदेशकी उस पहाड़ी गाँवकी स्वच्छ और उन्मुक्त वायुमें पहाड़ी झरनों और नदी-नालोंके किनारे पली हुई और मक्का-ज्वारके खेतोंमें और फल-फूलोंसे भरपूर हरे-भरे पेड़ों-तले सखी-सहेलियोंके संग उछल-कूदकर मनमानी मौज उड़ानेवाली श्यामा पहले पहल नई बन्दी चिड़ियाकी तरह शहरकी चार-दीवारी और असंख्य जन-समूहद्वारा विकृत वायुके कारण, चाहे कितनी ही क्यों न तड़प उठी हो, भले ही वह इस नये अद्भुत संसारके करिश्मोंको देख-देखकर चकित हो और अपनी अनभिज्ञताके कारण कई प्रकारके कुतूहल प्रकट करके मोहनके सामने उपहासकी पात्र बनी हो; परन्तु बहुत अल्प समयमें ही उसने किस भाँति उसके कुर्सी, पलंग गलीचे आदिपर उठने-बैठनेकी सभ्यताको, टेबुलपर बैठकर नाना प्रकारके चीनीके बर्तनोंमें खाना खानेकी उपयोगिताको तथा बातचीत करनेके ढंगको अपनी प्रखर बुद्धिद्वारा अपना लिया, यह सब

विस्तारसे कहना वृथा जान पड़ता है।

हाँ, उसने अपने देशको, अपनी गँवारू भाषाको और इससे भी अधिक अपनी सखी-सहेलियोंकी यादको भी मोहन-द्वारा प्राप्त होनेवाले इस आदर-सत्कार, प्रेम और प्रशंसाके सामने तुच्छ जानकर भुला दिया। श्यामा यौवन-रूपी मदभरी नदीकी उत्ताल तरंगोंमें उछल उछल कर बहने लगी।

दिनको जब मोहन अपने आफिस चला जाता, तो श्यामा घंटों अपने शरीरकी सफाईमें खर्च करती, बक्स और अलमारीमें रखे हुए रंग-बिरंगे चमकदार रेशमी वस्त्रोंको छाँटनेमें न जाने कितना समय व्यतीत कर देती और संध्या होनेसे पूर्व ही वह कोई बढ़िया ज़रीदार साड़ी अथवा सलमे-सतारेकी झिलमिल करती हुई पोशाक़ पहन अपने घने लम्बे काले केशोंको यत्नसे सँवारती और भाँति भाँतिके सुगन्धित तेल डालकर उन्हें विविध रीतिसे फूलोंद्वारा गूँथती थी। फिर बिजलीके तीक्ष्ण आलोकित प्रकाशमें जब वह बड़े आईनेके सम्मुख सज-धजकर मस्तीसे झूमती-झामती मानो रूप-लावण्यकी वर्षा-सी करती हुई बड़े अभिमानसे जा खड़ी होती तो स्वयं ही अपनी छबिको निहार जैसे मन ही मन गर्वित हो कह उठती, 'भला, वह रूप और यौवन भी किस कामका जिसे किसीने न परखा ही, न सराहा ही! वह नगमें और तराने भी किस कामके जिन्हें सुनकर कोई हृदय झूमकर मस्त ही न हुआ, और वे अदाएँ ही क्या, जिन्हें देखकर किसी दिलने आह न खींची!'

मोहनको यदि किसी दिन घर लाटनेमें घंटे-भरकी भी देर

हो जाती, तो श्यामाको यह क्षणिक वियोग असह्य हो उठता। वह कभी एक कमरेसे दूसरे कमरेमें और कभी आँगनमें व्याकुल हो चक्कर काटती और फिर बरामदेमें जा सड़ककी ओर देखते हुए कोई विरह-गीत गुनगुनाया करती। और जब मोहन चुपके चुपके पीछेसे आकर उसकी उत्सुकता-भरी आँखें मूँद लेता, तो श्यामाके सारे शरीरमें जैसे बिजली-सी दौड़ जाती। वह उस कोमल स्पर्शसे मानो बेसुध-सी हो उठती। आह! वह कैसा मायावी जाल बिछा रखा था मोहनने, और कैसी अल्हड़ थी वह भोली बालिका श्यामा!

२

जिस समय उमंगोंके बादल और तरंगोंकी हिलोरें दो भिन्न भिन्न हृदयोंमें एक ही क्षण, एक ही साथ, एक ही दिशामें उठ खड़ी होती हैं, तो उनके परस्पर मिलनसे एक विद्युत्की-सी अद्‌भुत रेखा प्रस्फुटित हो उठती है, आश्चर्यजनक स्फूर्ति मिलती है, आह्लादका गर्जन सुनाई देता है। जीवनका वह क्षण कितना मधुमय होता है! देश, जाति, शिक्षा आदि सभी प्रकारकी विभिन्नताओंके होते हुए भी हम एक दूसरेकी भीतरी आत्माके कितने निकट पहुँच जाते हैं! परन्तु जब कभी यही लहरें बेमौके और पृथक् पृथक् उठकर कुछ समयके लिए एक भयंकर तूफ़ानका रूप धारण कर लेती ह, तो उस घड़ी हम एक साथ उठते-बैठते और खाते-पीते हुए भी अपनेको एक दूसरेसे कितना दूर समझने लगते हैं! मानव-

स्वभावकी यह कितनी विचित्रता है !

हाँ, तो वसन्तकी बहार, ग्रीष्मकी तीक्ष्ण दुपहरी और सावन-भादोंके बदली-भरे दिन श्यामाने उसी विशाल नगरीके एक कोनेमें, उसी सजे-सजाये घरमें, मस्तीसे गुज़ार दिये; किन्तु न जाने क्यों करुण पतझड़की उदासी आनेके पूर्व ही उसने पिंजरबद्ध चिर-प्रवासिनी चिड़ियाकी भाँति एक विषाद-भरी रागिनी कुहक कुहक कर छेड़ दी ।

उन्माद उतर जानेके बाद जो दशा किसी मनचले युवककी होती है, वही दशा श्यामाकी थी । पूर्ववत् स्वतन्त्र जीवन बितानेकी चाह श्यामाके अन्तस्तलमें वेगके साथ उठ खड़ी हुई और उसके अन्तःकरणको व्याकुल करने लगी, मानो वह गहरी नींदसे उठी हो ।

किसी सुनहली संध्याको जब सूर्यास्तका मनोरम दृश्य देखनेके लिए उसकी आँखें तरसती होतीं और सायंकालकी ठंडी हवामें अपने मकानके एक ऐसे स्थानपर बैठकर जहाँसे थोड़ा-सा खुला आसमान दिखाई देता था, वह नीचेकी सड़कपर जहाँ कुछ बालक-बालिकाएँ मिलकर आँखमिचौनीका खेल खेल रहे होते निर्निमेष नेत्रोंसे एकटक देखा करती । श्यामाका हृदय उमड़ आता, और वह भी पुनः उसी दुनियामें प्रवेश करनेको लालायित हो उठती । एक क्षणके लिए उसका जी चाहता कि क्यों न वह भी उन बच्चोंमें मिल जावे; परन्तु नहीं, अब तो वह बाबू मोहनलाल रईसकी इज्जतदार बहू है !

यदि मोहन उसकी इस तुच्छ आकांक्षाको कभी सुन पाये, तो वह उसका कितना उपहास करे! वह तो यही कहेगा न कि श्यामाका जंगलीपन अभी तक नहीं छूटा। हाय, वह अनजानमें कैसा मँहगा सौदा कर बैठी है!

बाल्य-कालकी स्मृति और ग्रामीण तरुण हृदयकी अभिलाषाएँ तेज़ हवाके झोंकोंके समान शहरी सभ्यताके नियमों और रहन-सहनकी मर्यादाओंकी मजबूत दीवारोंके विरुद्ध रह रह कर थपेड़े मारने लगतीं, मानो अपने प्रबल वेगसे इन बन्धनोंको तोड़ डाले बिना उन्हें चैन नहीं।

अपने रूप और सौन्दर्यकी निरन्तर प्रशंसा सुनते सुनते श्यामा ऊब गई थी। वह उस शानदार मकानकी प्रत्येक वस्तुको अपनी स्वतन्त्रताके मार्गमें बन्धन-सा समझने लगी थी, मानो उसे आत्म-बोध हुआ हो। अब वह इस हाड़-मांसके शरीरको हर घड़ी सजानेकी अपेक्षा अपने आन्तरिक सूक्ष्म शरीरको खोज निकालनेका प्रयत्न करने लगी थी।

दोपहरीके सन्नाटेमें जब इस बड़े शहरके असंख्य काम-काजी मनुष्योंकी भाँति मोहन भी एक बड़े आफ़िसकी कुर्सीपर बैठकर अपने काममें व्यस्त होता है, तब बेचारी श्यामा अपने उसी घरके कमरोंमें एक कुर्सीसे दूसरी कुर्सीपर धमसे अनमनी होकर जा गिरा करती है। कभी कभी जब इस निस्तब्धताको भंग करते हुए नीलाकाशमें कोई चील चीं-चींकी लम्बी-सी करुण गूँज सम्पूर्ण वायुमंडलमें फैलाती हुई उड़ती चली जाती है, अथवा कभी सड़कपरसे कोई बंशी बेचनेवाला एक व्यथित-सी तान

छेड़ता हुआ निकल जाता है, तो श्यामाका दुखित हृदय उस गूँज और उस तानको एकदमसे समेटकर और भी बेकल हो उठता है। ताल-स्वरकी रागिनियोंके ज्ञानसे भले ही वह अपरिचित हो; पर ये ध्वनियाँ तो उसके अन्तस्तलमें प्रतिध्वनित होकर जैसे उसे किसी पूर्व-जन्मकी याद दिलाती हैं, और उसका हृदय वेदनासे भर जाता है।

इसी समय गद्देदार कुर्सीका विश्राम और बिजलीके पंखेकी कृत्रिम ठंडा पवन श्यामाके चित्तको उस पहाड़ी प्रदेशकी शीत-ऋतुके किसी अतीत सुखद प्रभातकी याद दिला देता है। अहा! उस रूखी-सूखी घाटीकी सम्पूर्ण नग्नता श्वेत हिमके आँचलमें किस भाँति छिप गई है! उस गाँवके सम्पूर्ण झोपड़ों और कच्चे-पक्के मकानोंपर, सूखे वृक्षों और चट्टानोंपर, पिछली रातको गिरी चाँदी-सी उज्ज्वल बर्फ़ प्रातःकालके हलके प्रकाशमें कैसी जगमगा रही है! मानो प्रकृतिने स्वयं ही सफेद साटनकी झिलमिल-झिलमिल करती हुई अनुपम पोशाक पहन ली हो!

श्यामा अपने भाई-बहनोंके साथ उसी रुई-सी ताज़ी बर्फ़के गोले बना बना कर अपने पड़ोसियोंके बच्चोंपर फेंक रही है। उन बच्चोंकी ओरसे भी वैसी ही गोलाबारी हो रही है। जब किसीके कपड़ोंमें वे शीत-कण घुस जाते हैं, तब विकट हँसीकी ध्वनिसे एक लहर-सी उठ खड़ी होती है। श्यामाके हाथ ठंडसे लाल हो चुके हैं; पर उसे कुछ परवा नहीं। वह अभी माँकी गर्म छातीसे चिपकाकर उन्हें गर्म कर लेगी।

किस तेज़ीके साथ दृश्य पलट जाता है!

सामने नदीके उस पारकी पहाड़ी ग्रीष्मऋतुके सूर्यास्तकी लाल किरणोंसे जैसे स्वर्णमयी हो गई है। श्यामा सखी-सहेलियोंके साथ सिरपर मिट्टीका घड़ा रखे ऊँचे-नीचे पहाड़ी रास्तेपर चलकर उन काली-सफ़ेद चट्टानोंके बीचों-बीच कल कल शब्द करते हुए बहनेवाले झरनेसे पानी भरने आई है; पर इतनी जल्दी क्या पड़ी है लौटनेकी? वहीं काली-सफ़ेद चट्टानोंपर पाँव फैलाकर एक दिलकश पहाड़ी गीत गाया जा रहा है। और कभी आसपासके सेब तथा खूमानीके वृक्षोंको ज़ोरसे हिला-हिलाकर फलोंसे झोलियाँ भरी जा रही हैं। और वे निर्जीव मिट्टीके घड़े भी उसी झरनेके नज़दीक पड़े पड़े मोतियोंकी वर्षा-सी फुहारोंमें नहाते रहते और मानो झरनेका संगीत सुनते रहते हैं।

ऐसे ही सुखद समयमें जब दरवाज़ेके बीचों-बीच खड़ा होकर रसोइया धीमे स्वरमें प्रश्न कर देता है, "बीबीजी! रातको तरकारी क्या बनेगी?" तो श्यामा एकदम चौंक-सी पड़ती है। वह कुछ क्षणके लिए किंकर्तव्यविमूढ़-सी हो देखती है; परन्तु दूसरे ही क्षण सम्हलकर चाँदीका एक चमचमाता रुपया फेंककर दूसरे कमरेमें चली जाती है और पलंगपर पछाड़-सी खाकर गिर पड़ती है। और जब उसी समय नौकरको मटर, आलू, गोभी लानेकी समस्या सुलझानेके लिए मालिकिनके पास दुबारा आनेकी ज़रूरत होती है, तब श्यामाकी आत्मा तड़प उठती है, और उसकी स्वच्छन्द आत्मा इस कारागारसे पल-भरके लिए मुक्त होनेकी उत्कट इच्छासे व्याकुल

हो जाती है।

× × × ×

इधर मोहन अब भी संध्याके समय मनमें यही आशा लिये घरमें प्रवेश करता है कि श्यामा उसका स्वागत करनेके लिए उसी तरह वस्त्राभूषणयुक्त और अलंकृत हो मुसकराती हुई दरवाज़ेपर मिलेगी। परन्तु यह क्या? श्यामाको तो अब जैसे वह कोमल स्पर्श भी कठोर प्रतीत होने लगा है। वह मोहनके आकुल भुज-पाशसे घायल हरिणीकी तरह निकल जाना चाहती है, और उसके बाद खुली खिड़कीके पास खड़े होकर चुपचाप तारों-भरे आकाशकी ओर देखने लगती है। उसके चेहरेकी वह मधुर मुसकराहट, जिसे देखकर मोहन मतवाला हुआ करता था, खोजनेपर भी दिखाई नहीं देती।

मोहन मानो विचलित होकर अनुराग-भरे शब्दोंमें प्रश्न करता, "श्यामा, तुम मुझसे नाराज हो क्या?"

श्यामाका व्यथित हृदय तो एक बार उसे उकसाता है कि वह कातर स्वरमें कह ही दे, 'मोहन, पल-भरके लिए तो मुझे इस बन्धनसे मुक्त कर दो।' लेकिन उसका जी भारी हो उठता है, वह दुबिधामें पड़ जाती है और आँखोंके कोनों तक जल भरकर दूसरी ओर मुँह फेरे रुँधे गलेसे उत्तर देती है, "नहीं तो।"

तब मोहन कुछ वैराग्यका-सा भाव धारण करके धीरेसे कहता है, "आजकल तुमने यह क्या वेष बना रखा है!

वह जार्जेटकी नीली फूलदार साड़ी और श्वेत मोतियोंके इयरिंग क्या बक्सकी शोभा बढ़ानेको ही लाये गये थे ? "

मोहन कहता चला जाता है, " यह जीवन चार दिनका है। यह अलबेला यौवन सदा न रहेगा। रानी, तुम नित्य नये वेषमें सज-धजकर मेरी आँखोंके सम्मुख मुसकराती रहो, और मैं चिरकाल तक तुम्हारी रूप-सुधाका पान करता रहूँ। "

श्यामाका ग्रामीण हृदय यह गम्भीर उपदेश सुनकर चीत्कार कर उठता है। उसकी सुप्त आत्मा जैसे जाग उठती है, " अरे, तो क्या नारीकी सृष्टि प्रभुने केवल इसीलिए की है ? और क्या पुरुष-मात्र नारियोंसे केवल इतना ही कुछ चाहते हैं ? "

काश, मोहन उस समय जान सकता कि इन वस्त्राभूषणोंकी चाहमें निरन्तर लिप्त रहनेवाली इस अपढ़ गँवार नारीके मनमें भी आज कोई ज्योतिकी किरण उदित हुई है ! मोहन ! कभी तुमने उसकी अन्तरात्माकी ध्वनिको भी सुननेका और पहचाननेका प्रयत्न किया है ?

किन्तु जिस किसी दिन कार्यवश थका-माँदा मोहन बहुत देरसे घर लौटता और चुपचाप आकर पलंगपर लेट जाता है, तो श्यामाकी हृदय-रूपी वेगवती नदीका प्रवाह एकदम उलटा बहने लगता है। वह अब भी मोहनके खिले मुखपर श्रान्तिकी हल्की-सी रेखा देखकर अधीर हो उठती है। वह सोचने लगती है—अरे, मैं कितनी नासमझ हूँ ! जो व्यक्ति मेरे ही सुखके लिए दिन-रात परिश्रम करनेके बाद मेरी एक ही मुसकराहटसे सब दुःख-दर्द भूल जाता है, क्या मैं उसके

प्रेम-बन्धनसे कभी छुटकारा पा सकती हूँ ?

बच्चेको दण्ड देनेके उपरान्त माँका हृदय जिस अनुताप और पश्चात्तापसे भर उठता है, वह जिस तरह और भी अधिक वात्सल्य-रससे ओतप्रोत होकर अपने शिशुको पुचकारती है, उसे नये नये खिलौने और भाँति भाँतिकी वस्तुएँ देकर अपने मनका उद्वेग कम करती है, ठीक उसी प्रकारके भावोंकी सृष्टि श्यामाके अन्तःकरणमें भी हो उठती है।

वह जल्दीसे स्वयं ही रसोईघरकी ओर जाकर नाना प्रकारके स्वादिष्ट भोजन परोसनेकी व्यवस्था करके बिना किसी शिकवा शिकायतके मुसकराती हुई मोहनके पास आ पहुँचती है। श्यामाके हृदयकी निरन्तर जलन, जो उसे घंटों तक बेचैन बनाये रखती है, इस समयके क्षणिक अनुतापके सम्मुख पिघलकर बह जाती है।

३

बरसों इसी भाँति गुजर गये हैं। सूर्य-चन्द्र-तारा सभी इस विश्वके रंग-मंचपर उसी प्रकार प्रदीप्त होकर अपना कर्तव्य पूरा करते चले जा रहे हैं। कहीं कुछ भी परिवर्तन नहीं। इस नीलाकाशमें प्रभातकी सुनहली किरणोंसे पूर्व आशामयी उषा हँसते हँसते अपना सन्देश नित्यप्रति सुना जाती है। बादलोंके समूह छिन्न-भिन्न तो ज़रूर हो जाते हैं; परन्तु पुनः उसी उमंगसे आस्मानको भर देते हैं। शीतकाल और हेमन्तकी प्रबल आँधी आती तो अवश्य है; किन्तु उसके बाद शीघ्र ही चंचल वसन्त

भी आ पहुँचता है। पर हा! प्राणी जगतकी हृदय-कली! जब तेरे हृदयका आह्लाद किसी भी आघातसे सहसा रुक जाता है; तब लाख प्रयत्न करनेपर भी भौतिक शरीरकी भाँति फिर वह पूरी तरहसे खिल नहीं पाता!

श्यामाके मानसमें भी अब वह उमंगों और तरंगोंका ज्वार-भाटा नहीं उठा करता। उसका हृदय अब उस सरोवरके स्वच्छ शान्त जलकी तरह हो गया है जो दक्षिण-पश्चिमकी प्रबल हवाके झोकोंसे उछल उछल कर पुनः उसी सीमित स्थानमें निश्चेष्ट और गम्भीर हो जाता है।

और शायद इसीलिए शहरकी विषैली वायुने ईर्ष्यापूर्वक श्यामाकी गुलाबी रंगतको छीनकर उसे हल्के पीलेपनका उपहार दे दिया है। शायद सभ्यताके नियमोंने भी उसके चेहरेपरकी वह चंचल मुसकराहट दूर कर दी है, और उसके माथेपर अनेक स्थिर गम्भीर रेखाएँ अंकित कर दी हैं।

परन्तु उसके जीवनमें पुनः रस लानेके लिए प्रभुने अपनी अपार दयासे उसे एक वास्तविक उपहार दिया है। दुग्ध-फेनकी भाँति शुभ्र और नवनीतकी तरह कोमल एक शिशु, जिसके अर्थहीन आँ-आँके स्वरमें स्वर मिलाती हुई वह अपनी कसकको भी भुला देती है।

आज उसके जीवनमें एक नये प्रेम और एक नये बन्धनकी मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही है।

श्यामा अब तितली सरीखी चंचल-हृदया सुकुमारी नहीं रही और न वह उद्भ्रान्त-चित्त तरुणी ही है। अब तो वह

अपनी सारी उमंगों और हसरतोंको हृदयके एक कोनेमें छिपाये रखनेवाली गम्भीर-हृदया माँ बन गई है। और इसी मातृत्वने मानो उसके जीवनकी सभी समस्याओंको बड़ी आसानीके साथ सुलझा दिया है।

सगाईके दिन

विद्याधरके हज़ार मना करनेपर भी उनकी बहन भगवतीने अपने अनेक मित्र बान्धवों और परिचितोंको निमंत्रण-पत्र भेज दिये। सगाईका मुहूर्त ९ बजे सबेरे दिया गया था किन्तु लगभग आठ बजेसे ही पास-पड़ोसके लोगोंका आना शुरू हो गया।

बरामदे तथा भीतरकी बैठकमें महिलाओं एवं बच्चोंके बैठनेका और बाहर कोठीके अहातेमें शामियाना लगाकर पुरुषोंके स्वागतका प्रबन्ध किया गया था।

कोठीके आस-पास लगे हुए केलेके झाड़ों और अमलतासके पीले पुष्प-गुच्छोंने सभा-मण्डपकी शोभा और भी बढ़ा दी थी।

शामियानेके नीचे एक ओर रंग-बिरंगे द्रव्योंसे चित्रित वेदीमें हवन-कुण्ड रखा गया था। धूप, चन्दन, अगर आदि सामग्रीके अतिरिक्त वहाँ क्यारियोंमें खिली बेला-चमेलीकी ताजी गंध भी बार बार उड़ती पवनके साथ मानों आगन्तुकोंका स्वागत कर उठती थी।

सफेद ड्रेसमें अनाथालयका बैंड किञ्चित् अवकाश ले लेकर एक नूतन राग बजा देता था।

विद्याधरके बहनोई लाला ज्ञानीराम तथा उनके भानजे श्री प्रकाशचन्द्र आने-जानेवालोंको आदरसहित बिठलाते जाते। सोडा-लेमनेड, पान-सुपारीके अतिरिक्त एक एक बेलेका

गज़रा भी आगन्तुक महोदयोंके गलेमें डाला गया।

शहर-भरमें लाला ज्ञानीरामसे भी अधिक मेल-मिलाप और जान-पहचान उनकी स्त्रीसे है। इसी कारण झिलमिलाते वस्त्र-आभूषणोंसे सुसज्जित युवतियाँ, कन्यायें एवं बड़ी स्त्रियाँ बादाम नारियल आदिसे भरपूर तौलियोंसे ढँके थाल बैठकमें एक ओर एक बड़ी मेज़पर सजा रही हैं।

बैठकमें कुछ देश-नेताओंकी और सिनेमा-एक्ट्रेसोंकी तसवीरें टँगी हैं।

जरी अथवा सलमेसे जड़ित पोशाक पहननेवाली टोली एक ओर बैठी हुई अपनी अपनी शादी-सगाईकी बातें सुना रही है। दूसरी ओर जम्पर-साड़ियोंपर काढ़े गये बेल-बूटोंकी चर्चा करती हुई कुछ युवती कन्यायें बैठी हैं। कमरेके बीचों बीच लाल दुपट्टा ओढ़े श्रीमती भगवतीदेवी बहुत-सी वृद्ध एवं प्रौढ़ स्त्रियोंसे घिरी शगुन लेने न लेनेका कार्य कर रही थीं। बरामदेमें एक ओर अल्पवयस्क बालकोंने ग्रामोफोन लगा रखा था। सफ़ेद वस्त्र पहने नौकर ट्रेपर, शीशेके गिलासोंमें लैमोनेड, सोडा, एवं कुछ मिष्टान्न लिये कमरोंमें घूम रहे थे।

मंत्रोच्चारण, शान्ति-पाठके साथ ९ बजे हवन समाप्त हुआ। विद्याधरके हाथमें कंगन बाँधा गया। कन्या-पक्षकी ओरसे उसके चाचा एवं भाई एक सौ रुपया तथा पचीस थाल फल-मिठाई आदिसे सजाकर लाये थे जिन्हें बड़े उत्साहसे उठा उठाकर सुरेन्द्र, महेन्द्र, पद्मा,—विद्याधरके छोटे भानजी-भानजे अन्दर कमरेमें ला रहे थे।

विद्याधरकी आँखें हवनके धुएँसे कुछ कुछ लाल हो रही थीं। किन्तु एक अलौकिक प्रसन्नता उसके चेहरेपर खेल रही थी। हृदयमें एक मृदु उल्लास था। गलेमें बड़ा-सा जूहीका गजरा, माथेपर केसरका टीका।

लज्जान्वित हो वेदीसे उठकर प्रथम उसने बहनोईके चरणोंमें प्रणाम किया, इसके उपरान्त एक-दो मित्रों एवं बच्चोंसे घिरा हुआ भीतर जीजीका आशीर्वाद लेने चला। बहनने भाईके सिरसे छुआकर रुपये पैसे बाँटे।

कुछ वृद्धा स्त्रियाँ एक साथ मीठे स्वरमें घोड़ी गाने लगीं—

"निकी निकी बूँदी निकया मींह वे वरे।
मॉं ऐ सुहागन—तेरे शगन करे!"

(नन्हीं नन्हीं बूँदें पड़ रही है! बच्चे, माँ, सौभाग्यवती तेरे शगुन मना रही हैं।)

एक दुपट्टेके कोरसे आँखें मलती हुई एक स्त्री बोल उठी, "हाँ, आज बेचारेकी माँ होती, बाप होता—"

दूसरी, "हाय! वह तो तरसती थी। इस घड़ीको आज विद्याधरकी नौकरी भी लग गई है, शादी होनेवाली है।"

तीसरी महिला धोतीपर दो लेसदार दुपट्टोंकी जोड़ीको सँभालती हुई कह उठी, "बेचारीके भाग्यमें यह दिन देखना नहीं लिखा था।"

युवक विद्याधर यह सब क्या सुन रहा है!

एक ही वर्षकी बात है। ओह! माँकी निर्जीव देह इसी स्थानपर, इसी कमरेमें पड़ी थी सब अपमानों,—सब

कष्टोंसे विमुक्त।

पिताको उसने जन्मसे नहीं देखा, सुन रखा है, उसके पिता एक सरकारी पदपर नियुक्त होकर बरमा गये थे। वहीं उन्होंने एक बरमी स्त्रीसे शादी कर ली और वहीं बस गये।

विद्याधरके मस्तिष्कमें यह विचार क्षण-भरके लिए घूम गया। जबसे उसने होश सँभाला है, अपनेको बड़ी बहनके घरमें पलते देखा है। सगी बेटीके घरमें रहते रहते माँ जिस लज्जाको पीकर रह जाती थी साथ ही साथ वह उसका अनुभव करता आया है।

उसकी आँखोंमें बचपनकी एक घटना बेतरह बौखला उठी।

वह जिद कर रहा है। मैं भी वैसे ही नये सफ़ेद बिस्तरेपर सोऊँगा जैसा प्रकाश (भगवतीके बड़े लड़के) ने लिया है। मैं भी वैसा ही कोट सिलवाऊँगा—हरा ब्लैज़र। बहनोई एक डंडा लेकर उसकी पीठ तोड़नेपर तुले हुए है!

"इतना साहस तेरा! कमीने!"

और जिस दिन शायद घरमें एक अवसरपर निमंत्रण दिया गया था,—बाहर बैठकमें बड़ी दावत हो रही थी! गाना-बजाना होता रहा बहुत देर तक। और माँ वहीं रसोई घरमें बैठी वर्तन मल रही थी। वह बार बार माँको खींचकर बाहर ले जानेका प्रयत्न करता। किन्तु और किसीने भी बाहरसे आये हुए लोगोंसे माँके परिचय करानेकी आवश्यकता नहीं समझी। कहनेको बड़ी छोटी-सी बात है। किन्तु एक अबोध हृदयपर ऐसी ही छोटी बातें सदाके लिए आघात छोड़ जाती हैं।

और जब एक दिन कालेज जाते समय माँसे रुपए माँगे तो इसी बहनने किस बुरी तरह माँको डाँटा था। "बच्चोंको बहुत बिगाड़ा न कर, कौन बैठा है तेरा यहाँ कमानेवाला?"

सचमुच माँ यदि आज होती! अपने पिताका स्नेह कहीं उसे प्राप्त होता! विद्याधर छोटे नन्हें बच्चोंकी तरह फूट फूट कर रो उठा।

उसके हृदयमें न केवल स्वर्गीया माँकी स्मृति ही, अपितु बचपनके अविधेय पराश्रित जीवन,—उस स्वाभाविक वात्सल्यपूर्ण पिपासाकी जागृति एक साथ हो उठी।

ओह! आज वह एक अच्छे कारोबारमें लग गया है, अच्छी आमदनी है। किस उत्साहके साथ आज यही सम्बन्धी समारोह मना रहे हैं!

"बस कर बेटा।"

विद्याधरके सिरको छातीसे लगा कर एक स्त्रीने कहा, जो शायद उसकी रिश्तेमें चाची लगती थी। "अब यही तेरे माँ-बाप हैं। अपने माँ-बाप ठंडी छाया होते हैं।"

किन्तु आँचलके कोरसे क्रमशः उसने अपने तथा विद्याधरके बहते हुए आँसुओंको पोंछा।

एक दूसरीके कानमें बातें करती हुई अन्य दो-तीन स्त्रियाँ कहने लगीं, "भगवतीका स्वभाव तेज था। डरती थी तो वह लड़कीसे।"

"भई, मरी हुई तो ज़रा नहीं लगती थी।"

"ऐसे लगती थी जैसे सो रही हो।"

क्षण-भरमें कमरेका सारा वातावरण एकदम निस्तब्ध हो उठा। ऐसा सन्नाटा छा गया मानो विद्याधरकी माँकी मृत देह यहीं बीचमें फ़र्शपर पड़ी हो।

इसी समय बाहरसे दो सुन्दर बालिकाओंको साथ लेकर भगवतीने प्रवेश करते हुए कहा, "विद्याधर, तुम्हारी छोटी सालियाँ तुम्हें देखने आई हैं।"

वसन्त है या पतझड़ ?

वसन्तका मदमाता प्रभात था। गुलाब, गेंदा, नरगिस आदि फूलोंकी महक बटोर बटोर कर शीतल समीरके झोंके, समुद्रकी लहरोंकी भाँति, खिड़कियोंकी राहसे अन्दर कमरेकी दीवारोंके साथ थपेड़े मारते थे और पुनः बाहर निकल जाते थे। इनके साथ ही ज्ञात तथा अज्ञात पक्षियोंका मधुर संगीत भी मानो सुनहली किरणोंका स्वागत कर रहा था।

स्नानागारसे अपने कमरेकी ओर बरामदेमेंसे होकर जाते हुए मेरी नज़र नीचेकी खिली हुई फुलवाड़ीपर जा पड़ी,—एक ओरके गोल घेरेमें गुलाब खिला था, दूसरी ओर एक क्यारीमें गेंदेकी बहार थी। बाहरवाले फाटकसे लेकर कोठीके सहन तककी सड़कके दोनों ओर अलबेली नरगिस अपनी भीनी भीनी सुगन्धि पवनको वितीर्ण करती जा रही थी। रंग-बिरंगे पुष्पोंका सौन्दर्य देखते ही बनता था।

वनस्पति-जगतका यह वैभव केवल हमारे मालीकी सृष्टि तक ही सीमित न था, बल्कि बाहरकी सड़कके वृक्षोंपर भी नई कोंपलें और नई हरियाली दिखाई दे रही थी। छोटे-बड़ेका भेद-भाव मिटाकर प्रकृति-माता मानो आज अपनी सभी सन्तानोंको नव-जीवनका उपहार बाँट रही थी।

वसन्तकी इस निराली छटाका आनन्द लेनेकी इच्छासे मैं वहीं बरामदेमें कुछ क्षणोंके लिए रुक गई।

"ओ रामकली! तुम तो सब मिट्टी लगा रही हो!" शोभाकी पतली-सी आवाज़ कहीं दूरसे इसी समय सुनाई दी।

यह शोभा कहाँ जा पहुँची है। मैं उत्सुकतापूर्वक इधर उधर देखने लगी। सब्जीकी क्यारियोंके उस पार मैंने देखा: हमारे मालीकी नवविवाहिता बहू रामकली और शोभा बारी बारीसे इधर उधर दौड़कर वसन्ती रंगकी एक धोती सुखा रही थीं।

मेरी शोभा जैसे जैसे बड़ी होती जा रही है, वैसे ही वैसे उसकी आवश्यकताओं और इच्छाओंमें भी परिवर्तन होता जा रहा है। अब वह केवल अपनी गुड़ियोंके खेलमें ही निमग्न नहीं रहती। अब उसे केवल लेमन ड्राप्स लेकर ही सन्तोष नहीं होता। उसका मन तो अब नेकलेस और इयरिंगजमें भी जा उलझता है, और वह अब नये डिज़ाइनकी साड़ी और नये रंगकी चूड़ियोंकी चिन्ता भी करने लगी है। तो भी बाल-सुलभ कोमलता, भोलापन और चंचलताकी झलक उसके मुँहपर अभी तक स्पष्ट दिखाई देती है। इस समय बाल-रविकी कोमल किरणें भी मानो इधर-उधरसे लुक-छिपकर उसके सुन्दर चेहरेके साथ खेलना चाह रही थीं। पीठपर लहराते हुए स्वच्छ और लम्बे केशों तथा श्रान्ति-जनित मुँहपरकी गुलाबी रंगतने मानो उसे फुलवाड़ीका एक अधखिला फूल ही बना दिया था। सचमुच वसन्तका यह शैशव था।

दूसरी ओर युवती रामकलीके अंग-अंगसे प्रगल्भ यौवनका उन्माद फूट रहा था। उसकी बड़ी बड़ी और काली आँखोंमें

मानो वसन्तकी समस्त मादकता भरी पड़ी थी। उसके उभरे हुए कपोल लज्जाकी लाली लिये हुए थे। वह अपने बदनकी सुडौलताके कारण ही साँवले रंगमें भी आकर्षक प्रतीत होती थी। बालिका शोभाके साथ उसका इधर उधर दौड़ लगाना इस तरह जान पड़ता था, जैसे गुलाबका एक खिला हुआ बड़ा-सा फूल एक अधखिली कलीको साथ लिये पवनमें हिलोरें ले रहा हो।

मैं फुलवाड़ीके फूलों और मानव-जगतके पुष्पोंकी तुलनामें ही मग्न थी कि पीछेसे शोभाने मेरा पल्ला खींचते हुए कहा, "माँ जी, देखिए, मैं आपका कितना काम करती हूँ। अभी अभी रामकलीसे आपकी साड़ी रँगवाकर लाई हूँ।"

अच्छा, यह बात है! मैंने पहले ही भाँप लिया था कि शोभारानी कोई फरमाइश लेकर आई होगी।

"तू आप ही निकालकर ले गई थी? कहाँ है वह साड़ी?"

शोभाने फ़रमाइश की, "माँ जी, रामकली कहती है, आज वसन्त है। उसने नई चूड़ियाँ भी पहनी हैं और नये कपड़े भी। वैसी ही चूड़ियाँ मुझे भी ले दो।"

"पगली! तुझे सबेरे सबेरे चूड़ियोंका खफ़्त सवार हो जाता है। बस, सारे दिनके लिए रामकलीसे ही दोस्ती बना ली है। ला, साड़ी तो दिखा।"

"आप वैसी चूड़ियाँ ले देंगीं, तभी दूँगी।"

नटखट लड़की साड़ी लेकर इधर उधर भागने लगी।

" अच्छा भई, ले दूँगी चूड़ियाँ। साड़ी तो दे न।"

बालिकाके हाथमें फूले सरसोंके रंगकी मलमलकी बारीक साड़ी देखकर मेरा हृदय उछल पड़ा। एक सोई हुई तरंग जाग-सी उठी। शोभासे साड़ी लेकर मैंने उसे बड़े स्नेहपूर्वक चूड़ियाँ ले देनेका वचन दिया और कहा, "तुम चन्द्रके साथ जाकर नीचे चाय पीओ, मैं भी अभी साड़ी पहनकर आती हूँ।"

क़रीब पन्द्रह वर्षोंसे लगातार गृहस्थीके धन्धोंमें जुते रहनेके कारण मुझमें साज-सजावटकी हवस और नये नये वस्त्र-आभूषण पहननेका शौक बहुत कम बाकी बच रहा है; परन्तु आज इस वसन्ती साड़ीको पहनकर मैं मानो सोलह वर्षोंका लम्बा व्यवधान भूलकर अपने नवयौवनके प्रारम्भिक दिनोंमें जा पहुँची। उमंगोंका तूफ़ान जोरोंसे बहने लगा। मैंने काले सन्दूक़मेंसे हरे मखमलका डिब्बा निकाला और सब पुराने और नये ढंगके जड़ाऊ आभूषण पहनने शुरू कर दिये। सोने, मोती, हीरे, पन्नेकी हरित, पीत और श्वेत झलकसे सारा कमरा आलोकित हो उठा। इतनी जगमगाहट देख मैं गर्वित हो, स्वयं अपनी ही रूप-राशिको परखनेके लिए, सिंगारकी बड़ी आलमारीके फुल साइज़के शीशेके सामने जा खड़ी हुई; किन्तु ठोस सत्यके पक्षपाती इस दर्पणने मेरे हृदयमें एकबारगी उथल-पुथल-सी मचा दी। मेरा जी सहसा खिन्न हो गया।

श्वेत कमलतुल्य हाथोंमें सच्चे मोतियोंके श्वेत लच्छे खूब खिल रहे थे; पर साथ ही साथ उनपर नीली नीली रेखाएँ-सी

भी खिंच गई थीं !

गलेमें चन्द्रहार वैसा ही शोभा दे रहा था; परन्तु उसके निकटकी दो उभरी हुई हड्डियोंने मुझे एकबारगी उद्विग्न कर दिया।

बड़े यत्नसे सँवारे गये केशोंमें भी मुझे दो-चार मनहूस सफ़ेद बाल दिखाई दे गये। नाकके दोनों ओर चश्मेके निशान देखकर मैं अभी विचलित हुई ही थी कि दोनों आँखोंके नीचे काली काली खाइयोंपर मेरी निगह जा पड़ी !

मैं भयभीत हो उठी। मुझे अपनी अवस्था सामने फलोंकी सुन्दर तश्तरीमें रखे गये उस काश्मीरी सेबके समान जान पड़ी जो वहाँ करीब दो सप्ताहसे पड़ा रह गया था और जिसकी गुलाबी रंगत क्रमशः सिकुड़नमें विलीन होती जा रही थी।

इन गड्ढों, खाइयों और नीली रेखाओंको एक साथ देख मैं अधीर हो उठी और अकस्मात् चौंक पड़ी, "ओह ! आज वसन्त है या पतझड़ ?"

मेरा क्षण-भरका उन्माद उतर गया। अब मुझे साफ़ दिखाई दे रहा था कि निष्ठुर काल अपनी तीव्र और अदृश्य गतिके अमिट चिह्नोंकी छाप मेरे इस लाड़-प्यारसे पाले गये शरीरपर लगाता चला जा रहा है। श्वास-प्रश्वासकी इस प्रगतिमें, रवि-शशिकी इस आँख-मिचौनीमें और दिन-रातकी इस हेराफेरीमें मेरा यौवन-वसन्त बिखरा पड़ा था।

ओ स्वयं पूर्ण-स्थिर, अविचल महाशक्ति ! तुझे अपनी

इस सुन्दर सृष्टिको क्रमशः विकसित करके पुनः शून्यमें समेट लेनेकी इतनी उत्सुकता क्यों बनी रहती है? तेरे शासनमें इतनी अस्थिरता, इतनी कठोरता और इतना परिवर्तन क्यों है?

दिन काफ़ी चढ़ आया था। और तब मुझे बड़ी झेंप-सी मालूम हुई जब मैंने शोभा और चन्द्रको दरवाज़ेके बाहर खड़े होकर हँसते हुए सुना। मानो वे दोनों मुझे कार्टून-सा बना देखकर हँसीके फ़ौवारे छोड़ रहे हों!

कलकत्ता, १९३६

उलझन

दिल्ली, १२ दिसम्बर १९३७

प्रिय सुनीति,

तुम्हारे कई पत्रोंका उत्तर जाने कबसे नहीं दे पाई ! क्षमा करना । केवल तुम ही नहीं, सब कोई लिखते हैं—तुम्हें क्या हो गया है ?

पिछले कई महीनोंसे मेरे मस्तिष्कको ऐसे ऐसे अनोखे विचार घेरे रहते हैं, मनमें एक द्वन्द-सा मचा रहता है, जिनके कारण मैं उद्विग्न-सी होती जा रही हूँ ।

खड़ी कहाँ होती हूँ और सोचती कहाँकी बातें हूँ !...

कल रात यूँ ही अचानक नींद टूट गई । बाहर खुले आँगनमें पूर्ण चन्द्रकी खिली ज्योत्स्नाने अपूर्व सौन्दर्य बखेर रखा था ।

सुनीति ! यह तारे, यह चाँद—उड़ते हुए बादल एकांतमें कितने भले मालूम होते हैं !

झट उठी । जाड़ेके दिनोंमें बिस्तरसे निकलना कितना कठिन होता है ! किन्तु प्रभात होते ही इस कोलाहलपूर्ण जगत्में कहाँ फुर्सत होगी अनन्त सुधारसको पीनेकी !

पूनोंके निखरे नीलाकाशमें छोटे छोटे श्वेत बादलोंसे अठखेलियाँ करता हुआ चौदसका चाँद बलिहार ! मुझे वह दिन याद आए जब हम-तुम दोनों श्रीनगर....सबसे

ऊपरवाले कमरेमें कितनी रात गए....पहाड़ोंके पीछेसे चन्द्रोदयका दृश्य....चिनारके बड़े वृक्षसे छन छनकर आती हुई चाँदनीका आस्वादन किया करती थी।

बहिन ! सृष्टि सचमुच कितनी सुन्दर है ! लेकिन आज सोचती हूँ—यह तारे, यह चाँद, यह प्रकृतिका उन्मुक्त अद्भुत संगीत ही केवल मानवका सहारा नहीं।

हाँ तो ! रात जब भीतर आकर ठंडकमें सिकुड़े मोहन और रेणुपर कम्बल डाले तो खयाल आया....कबसे कितने वर्षोंसे....,उस सिरहानेदार पलंगोंकी जोड़ीकी, उन रुईदार खाकी कम्बलोंकी इच्छा अभी तक पूरी नहीं हुई। जैसे कोई धिक्कारने लगा। तेरी आकांक्षायें! तुच्छ, हेय नहीं क्या !

ओ हो....देखा था....एक दिन सात सात व्यक्तियोंको एक साथ चिथड़ेमें रात काटते हुए। वे भिखमंगे न थे। थे दिन-भर मेहनत मजदूरी करनेवाले, दिन-भर बोझा उठानेवाले।

शहरके उस हिस्सेमें भी एक दिन मैं गई थी जहाँ नये बँगले बन रहे हैं, बुखारसे पीड़ित दो नन्हें बच्चोंको वहीं गीली भूमिमें लिटा उनकी माँ मट्टीकी टोकरियाँ भर भर पहुँचाए जा रही थी।

बहन ! बेसिर-पैरके विचारोंसे तुम अवश्य ही उकता जाओगी किन्तु जितना ही मैं इन्हें हटाना चाहती हूँ, उतनी ही तेजीसे वे मुझे उलझनोंके चक्करमें डालते चले आते हैं।

अच्छा, एक बात और लिखूँगी।

देखो, उस दिन हम लोग प्रमोद भाईके साथ महल देखने

गये थे। अशोक और नीमके सुवासित पेड़ोंसे आच्छादित सड़कोंको पार करके वह चकाचौंध करनेवाला राज-प्रासाद कभी तुम देख पाओ तो....

मोहन जो कभी भी किसी चीज़को महत्त्व नहीं देता, आश्चर्यसे आँखें फाड़ न जाने क्या क्या कहने लगा!

मैं अपनी डायरीमें नोट करती जा रही थी—महलकी सैर—

(१) दो करोड़की लागतका महल....

(२) तीन हजारके श्वेत पलंग....

(३) तीन सौ चौंसठ कमरे....

(४) बेशुमार चाँदी सोनेके कामसे मढ़ी कुर्सियाँ, मेज....

(५) महलका रंग पसन्द नहीं है, इसलिए पचास हजारके व्ययसे बदला जाना....

महलके नृत्य-भवनके साथवाले बरामदेमेंसे सारी दिल्लीका सुन्दर हरा-भरा दृश्य दिखाई पड़ता है, नई दिल्लीका ढाँचा इस खूबीसे तैयार किया गया है कि क्या बताऊँ। इस बरामदेसे पत्थर कूटनेवालोंकी बस्ती भी दिखाई पड़ती है।

मुझे याद आ गया, एक दिन उस ओर गई थी....ज्येष्ठ मासकी दोपहरीमें; पत्थर तराशे जा रहे थे; सड़कपर स्त्री, पुरुष, बच्चे सब मिलकर ठेलोंमें भर रहे थे। कुछ जवान आदमी रोड़े कूट रहे थे। ठेकेदारका नौकर कहे जाता था—शाबाश, मट्टीके शेरो! अभी क्या, अभी तो पसीना भी नहीं बहा—बात तब जब नाली पानीकी तरह पसीना बह निकले!

सच कहती हूँ सुनीति बहन ! इतना लांछित, इतना अपमानित, इतना गौरवहीन अपनेको जीवनमें कभी भी नहीं पाया जितना उस समय। उस विदेशी झण्डेके नीचे खड़े होकर, जो महलकी सबसे ऊपरकी मंजिलमें फहरा रहा है, मुझे ऐसा लगने लगा मानों इस महलके इर्द-गिर्द भूख-प्यास, अत्याचार, भूत-प्रेतोंकी नाईं मँड़रा रहे हों ! बार बार पेट उभरे हुए नंगे बच्चे, गरीबी एवं अशिक्षासे कुचली हुई मानव-सन्तान आँखोंके आगे—जैसे मुझे डराने आती हो।

छोड़ो, अब और न कहूँगी,—एक दर्द-सा ऐसा उठता है...। लेकिन हम लोगोंकी मनोवृत्ति इन राजा-महाराजाओंसे कम है क्या ?

पत्र लिखते लिखते बीचमें उठ जाना पड़ा। बाहर सब्जीवाला पुकार रहा था।—सुनीति ! देखो न, ग़रीब आदमीसे जरा भी अच्छी तरह बोलो तो वह कितना अपनापन समझने लगता है !

गाजर तोलते तोलते आप ही कहने लगा, "मा जी ! इतवारको मैं नहीं आया था न ! मेरा छोटा बच्चा मर गया था।" हैं ! कैसी कृत्रिम मुस्कराहट ला कर कह रहा है—जैसे उसके पितृ-हृदयपर रोने चीख़नेके लिए भी बाँध लगा दी गई हो।

मैंने पूछा, "क्या हुआ था उसे ?"

"मांजी ! उसकी पसली चली थी !" पसली चलनेके

माने ठंड लग जाना होता है, जब मैंने जाना तब मेरा ध्यान उसके बड़े बच्चेपर गया जो मोटा खद्दरका मैला कुचैला फटा कुरता पहने, बापको टोकरी उठानेमें सहारा दे रहा था। बात कोई खास नहीं थी, किन्तु, तुमसे कह चुकी हूँ—आज कल मेरे मास्तिष्कमें ऐसी ऐसी फ़िज़ूल बातें भरती जा रही हैं।

बैठे बैठे उड़ते बादलोंकी तरह भाव उठते हैं और क्षण-भरमें मिटकर पुनः कई आकार धारण कर लेते हैं।

बाजार! कपड़ेकी दुकान! थानके थान गर्म, रेशमी, सूती खोले जा रहे हैं। उस दिन मैं भी अपनी एक पड़ोसिनके साथ चली गई थी।

पहली तारीख़को बिजलीकी रोशनीमें दिल खोलकर ग्राहक लोग सौदा ख़रीद रहे थे। इन ढेरके ढेर कपड़ोंको देखकर मुझे प्रिन्स क्रोपटकिनके विचार याद आने लगे:

"जब मकानोंपर नागरिकोंका सम्मिलित अधिकार हो जावेगा और सब आदमियोंको भोजन मिलने लगेगा, तो एक कदम और आगे बढ़ना होगा। जिन जिन दुकानों और गोदामोंमें कपड़ा बिकता है या इकट्ठा रहता है, उनपर जनता कब्ज़ा कर ले, वहाँ सबको आज़ादी रहे, जितना जिसे चाहिए वह उतना ले ले।

"यदि हम बड़े शहरोंकी दुकानों और भाण्डारोंके सारे कपड़ेकी सूची बनावें तो शायद हमें मालूम होगा कि इन बड़े बड़े नगरोंमें इतना काफ़ी कपड़ा है कि समाज या सारे देशके स्त्री-पुरुषोंकी पोशाकें बन सकती हैं।"

तुम्हें याद होगा, कभी मैं इन रूखे सूखे विचारोंकी पुस्तकोंको कूड़ेके ढेरमें फेंक दिया करती थी।

हाँ, तो कपड़ेकी दुकानपर बैठे बैठे मैंने देखा, पासवाली दुकानपर एक नवदम्पति मोज़े, टाई, कालर आदि ख़रीद रहे हैं। सौदा ख़रीद कर जब उन्होंने....तीस रुपएके ताज़े ताज़े नोट निकाले तो सामने खड़े हुए उस व्यक्तिकी निगाह जिसे दूकानदारने अभी कहा था, 'जा रामधन! गाड़ीमें सामान रख आ' नोटोंपर ऐसी तीखी अतृप्त-सी पड़ी। वह दृष्टि! जाने क्यों मेरे हृदयमें शूल-सी गड़ गई।

× × ×

१३ दिसम्बर १९३७

सुनीति! तुम कहोगी क्या ऊटपटाँग चिट्ठी लिखी है। कल इतना लिखनेपर मेरी वह सखी आ गई। बोली "चलो सिनेमा ले चलें।" हाँ सिनेमा, तमाशा, हँसी, विनोद हमारे जीवनमें आवश्यक होना ही चाहिए। क्योंकि हम लोग निरन्तर काम करनेसे थक जाते हैं। किन्तु जीवन है क्या? हम कमाते हैं, खाते हैं, अच्छे वस्त्र पहनते हैं, सो जाते हैं। इसी तरह दिन-रात, रात-दिन गुज़रते चले जाते हैं। ज़िन्दगी इसीको कहते हैं क्या? इस दुःखदायी प्रश्नकी उलझनसे मैं तंग आ गई हूँ।

कल फिर वहाँ एक बात हो गई जो रात-भर मेरी बेचैनीका कारण बनी।

सिनेमा-हालके बाहर मोटरके पास खड़े होकर एक टोकरी

उठानेवाला बूढ़ा कुली कह उठा, " सबेरेसे भूखा हूँ।"

"भूखेके बच्चे!" मोटरसे उतरनेवाले सज्जन झपट पड़े। क़िस्मतसे बूढ़ा बचा लिया गया। तब वह साहब अकड़कर कहने लगे, "अजी यह क्या! उस दिन टाँगेवाले जवानको ऐसी जमाई थी कि बच्चा क्या जानता होगा। यह लोग समझते हैं, साहब लोगोंमें दम नहीं होता।"

ठीक है, खेल शुरू हो जाता, तो क्या मज़ा रहता! हमारे विनोद, हँसी-खुशीके समय यह कीड़े मकोड़े सरीखे जीव बाधा डालनेवाले कौन हैं?

सुनीति रानी! आश्चर्य करोगी, आजकल इन सब्ज़ीवालों, कुलियों, मज़दूरों, पत्थर कूटनेवालोंके साथ सहानुभूति क्यों बढ़ती जाती है। भई! कभी मैं भी तुम्हारी तरह उस सुरम्य उपवनमें चमेलीके बेलके नीचे, किसी स्वर्गलोककी कामना किया करती थी। संसार तब कितना मधुर था! नदी-नालोंकी साँ साँ चिनारके पत्तोंकी मर-मर ध्वनि मेरे लिए कविताकी गुञ्जार लाती थी!

किंतु आज हृदयमें उस सौंदर्यको,—उस रसको ढूँढ़ना चाहती हूँ, जिसके अभावके कारण ही मनुष्य एक दूसरेको चूसना चाहता है।

इन्हीं उलझनोंमें—

दिल्ली, १९३८

तुम्हारी—

उषा

मालीकी लड़की

मास्टरके चले जानेके बाद विजयकुमार उस ऊँचे समतल टीलेपर खड़े होकर दोनों हाथोंसे इस जोरकी ताली पीटते कि वह सम्पूर्ण पर्वतखण्ड गूँज उठता; और उन तालियोंके प्रत्युत्तरमें बिक्की, ऊषा, हर्ष आदिका स्वागत-मंडल भी लकड़ीके बने हुए फ़र्शपर अपने भारी बूटोंसे धम धम करते हुए और तड़ तड़ तालियाँ बजाते बजाते वेगपूर्वक कोठीसे बाहर निकल पड़ता। फिर उसी हरे-भरे ढालू स्थानपर सब जने उलझी लताकी भाँति एक दूसरेसे लिपट जाते और हः हः की विकट ध्वनिसे हँस हँस कर लोट-पोट होते हुए छलाँगे लगाते नाले तक नीचे पहुँच जाते, और तब न जाने कितने प्रकारकी कौतुक-क्रीड़ाएँ उस बर्फ़ीले नालेके किनारे पर पड़ी स्वच्छ ठोस शिलाओंपर किया करते।

शिशु-जगतके इस क्षीण-कोमल मृदुहासमें ज्येष्ठ मासकी मनोहर प्रकृति मानो और भी मतवाली हो उठती। आकाश तक ऊँचे लम्बे घने वृक्षोंमें जहाँ तहाँ छिपे हुए सैकड़ों अज्ञात पक्षी अनेक स्वरोंमें सुरीले गान गा उठते। सामने ही पहाड़ीपरका निरन्तर झर झर करता हुआ झरना मानो द्विगुणित होकर कल-कलकी ध्वनि करने लगता। उन सुरभित फूलोंसे लदी वनस्थलीमें इधर उधर मस्तीसे सरसराती हुई शीतल पवन भी इन सबके सुरमें सुर मिलाने लगती। कभी

कभी सहसा न जाने किस किस ओरसे श्वेत बादलोंके समूह हरे मैदान तक नीचे उतर आते और इन बालकोंको आलिंगन करके वापस लौट जाते। उसके बाद सूर्यकी हल्की निस्तेज किरणें सघन झाड़ियोंमेंसे छन छन कर नवनीत-से कोमल भोले मुखड़ोंको पुनः चूमने लगतीं।

भाई-बहनोंके इस अपूर्व आह्लाद और हँसी-खुशीके उमड़ते हुए आनन्द-सागरमें डुबकियाँ लगानेके लिए तरसते तो केवल दो सतृष्ण नेत्र,—दो अतृप्त आँखें। वे आँखें थीं इस कोठीके चौकिदारकी एकमात्र अष्टवर्षीया कन्या मुक्ताकी। प्रतिदिन दोपहरीके समय उसका पिता पीछेके घने जंगलमें लकड़ी काटनेके लिए चला जाता और मुक्ताको नीचेके मैदानमें चरवाहोंके बालकोंके साथ पशुओंकी रखवालीके लिए छोड़ आता। किन्तु वह बेचारी मैली-कुचैली बालिका मैदानसे भाग आती और आखें फाड़ फाड़ कर इन साफ़-सुथरे शहरी बालकोंके असीम प्यार एवं मधुर हास्यके विचित्र कोलाहलको दूर दूरसे ही देखा करती और जैसे उनके खेल-कूदमें भाग लेनेके लिए उत्कण्ठित हो, कभी दाहने, कभी बायें और कभी सीधेसे आकर उन बालकोंके आसपास मँड़राया करती। बालकोंके इस खेल-कूदसे सर्वथा पृथक् रहनेपर भी कुछ ही दिनोंमें वह इनकी चेष्टाओंमें इतनी तन्मय हो गई कि उनकी हँसीके साथ अनायास ही वह मुसकरा देती और उनके लड़ाई-झगड़ेमें उसकी भी वैसी ही मुद्रा बन जाती।

नियमानुसार ठीक ग्यारह बजे तड़ तड़ करके तालियाँ बज

उठीं और धम-धमकी आवाज़ सुनाई दी; किन्तु और दिनोंकी अपेक्षा आज इस आनन्दोल्लासमें सुर-तालकी मात्रा अधिक जँची जान पड़ती थी। हू-हू करके चीखते हुए और ढब-ढब करके नाचते हुए ये लोग मानो सुखकी नींद सोई पर्वत-श्रेणीको चौंका रहे थे।

अपना दिलचस्प उपन्यास वहीं अँगीठीपर रखते हुए आनन्दकुमारीने कहा, "भाभीजी, आज तो विजयको ज़रूर ही कोई नई चीज़ मिली है! आइए, चलकर देखें!"

"होगा कोई रेबिनका घोंसला या कोई नये रंगकी तितली—मास्टर जाता है, तो इनकी बला टलती है।" मृणालिनीने बुननेकी सलाई फिरसे आरम्भ करते हुए उत्तर दिया।

"और क्या वह भी दिन-रात आपकी तरह स्वेटर बुना करे?"—आनन्दकुमारीने कहा।

इसी समय बगलवाले कमरेसे आवाज़ आई, "अजी, ज़िन्दगीका लुत्फ़ स्वेटर बुननेमें नहीं है।"

"नहीं, ज़िन्दगीका लुत्फ़ तो बिस्तरेपर लेटकर पुस्तकें पढ़नेमें ही है। अच्छे घरसे सैर करने निकले हैं।" मृणालिनीने अपने पति देवकुमारकी बातका व्यंगपूर्वक उत्तर दिया।

आनन्दकुमारीने मृणालिनीके गलेमें पीछेसे दोनों हाथ डालते हुए बड़े प्रेमसे कहा, "भाभी, चलो न!"

रसोइयेको शीघ्र भोजन तैयार रखनेकी आज्ञा देकर ननद-भौजाईने नालेके पास जाकर देखा कि बच्चोंका नाचना-कूदना

व्यर्थ नहीं है। विजयके हाथमें एक दूध-सा सफ़ेद बिल्लीक बच्चा है, और सब लड़के द्रुतगतिसे बहती हुई उस जल-धाराके समीप ही एक झोंपड़ा बनानेकी व्यवस्था कर रहे हैं आश्चर्यकी बात तो यह है कि मुक्ता भी बच्चोंकी इस फ़ौजमें शामिल हो गई है, और विजय एक कमांडरकी भाँति उसे हुक्म दे रहा है—जाओ, वह लकड़ी लाओ, वह पत्थर उठा लाओ। और किस फुर्तीसे वह फूल-सी बालिका जंगलकी टूटी-फूटी तख्तियाँ और सीधे, नुकीले पत्थर एकत्रित कर सामने रखती चली जा रही है! बिल्लीका बच्चा देकर विजयसे हेल-मेल बढ़ा सकनेका यह अचूक उपाय मुक्ताने स्वयं ही ढूँढ़ लिया था। परन्तु आज ऊषा, हर्ष, बिक्की आदिको तो आफ़त थी, क्योंकि वह मुक्ताके बराबर और वैसी फुर्तीसे काम नहीं कर सकते थे।

आनन्दकुमारीने अच्छा मौका देखकर कहा, "वाह सार्जेण्ट साहेब! आज तो बढ़िया शिकार हाथ लगा है!"

विजयकी आनन्दसे गहरी पटती है, और वह सार्जेण्टके नामसे बहुत चिढ़ता है, इसीलिए विजय कुछ नहीं बोला केवल हूँ-हूँ करके दाँत कटकटाता रह गया।

२

पहाड़पर जानेके प्रायः एक मास पूर्व ही देवकुमारने अपने मित्र मि० कौलको कोठी इत्यादिका प्रबन्ध करनेके साथ ही साथ विजयके लिए एक ट्यूटर ढूँढ़ रखनेके लिए भी लिख दिया था, ताकि दो-तीन मासकी छुट्टियोंमें बच्चेका समय नष्ट न हो

इसी कारण इस वर्ष परिवारको साथ ले जाकर भी उन्हें किसी प्रकारकी दिक्कत नहीं उठानी पड़ी। परिवारमें उनके तीन बच्चों और पत्नीके अतिरिक्त उनकी छोटी बहन आनन्दकुमारी भी कालेजकी छुट्टियोंमें साथ हो गई थी। उनकी बड़ी बहनके दो-तीन बच्चे भी साथ ही थे।

कई प्रकारके जंगली वृक्षोंसे घिरी हुई यह ९७ न० की कोठी धूप-अगरकी सुगन्धित हरी पीली झाड़ियोंसे आच्छादित उस विशाल पर्वतकी ढालपर स्थित है। कोठीके चारों ओर बहुत-सी खुली जगह छोड़कर उस असीमित स्थानमें लकड़ीके जंगले द्वारा सीमा बाँध दी गई है। इस जंगलेका कच्चा-सा फाटक कोठीसे पचास-साठ गज नीचेकी ओर एक टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डीके आरम्भपर बना है। फाटकके समीप ही नालेका पुल है। कोठीके विस्तृत घेरेमें जहाँ सफ़ेद फूलोंके खेतसे उग आये हैं, एक ऊँचा समतल स्थान विजयने अपने पढ़नेके लिए चुन लिया है।

कच्चे फाटकसे कुछ ही दूरपर एक छोटी-सी कोठरी चौकीदारके लिए बनी है। चौकीदारको चौकीदार न कहकर सब लोग माली कहते हैं और मुक्ताको मालीकी लड़की। माली यहीं नीचेके एक पहाड़ी गाँवका रहनेवाला है। वर्षोंसे वह इसी कोठीकी चौकीदारीका काम करता आया है। शीतकालमें जब यह विशाल पर्वतखण्ड हिमका श्वेत दुशाला-सा ओढ़कर समाधिस्थ हो गहरे चिन्तनमें लीन हो जाता है, तो चौकीदार भी मानो उसकी तपस्यामें विघ्न-बाधा न डालनेकी

इच्छासे चुपकेसे अपने गाँवको चला जाया करता है।

मालीका काम दिनमें जंगलसे लकड़ी काटकर लाना, नालेसे पानी भरना और रातको चौकसी करना है; पर जब कभी उसे कमरे साफ करनेको कहा जाता है, तो वह बड़े रूखे-से ढंगसे बड़बड़ाने लगता है, "हजूर, हमसे इतना काम नहीं होगा।" उसे बच्चोंका फूल आदि बिगाड़ना भी पसन्द नहीं है, इसीसे देवकुमारको प्रतिदिन उसके विरुद्ध अनेक शिकायतें सुननी पड़ती हैं। किन्तु उसकी लड़की मुक्ता? मुक्ताके चेहरेपर कुछ ही दिन पूर्व असमानता, दीनता और भयकी जो छाप सदैव बनी रहती थी, उसे किस विचित्र कौशलद्वारा इस ग्रामीण बालिकाने स्वयं ही दूर कर दिया है, यह देखकर आश्चर्य होने लगता है।

× × ×

विजयके सोकर उठनेके पूर्व ही आज मालीकी लड़की मुँह-हाथ धोकर अपना लम्बा कुरता और लाल टोपी पहने निस्संकोच भावसे बरामदेमें आ खड़ी हुई। कुछ ही देरके बाद चाय पीनेके समय बच्चोंने जब बिस्कुट-मक्खन-टोस्टके लिए ऊधम मचाया, तो उसने भी अपने पिताको मिट्टीके प्यालेमें चाय और कुलचा देनेको मजबूर कर दिया। दोपहरके समय जब विजयकी पार्टी खानेके लिए बैठकर नाना प्रकारके स्वादिष्ट भोजन उदरस्थ करने लगी, तो मुक्ता भी मिट्टीके बड़े बर्तनमें बासी भात लेकर एक ऐसी जगह खाने बैठ गई, जो खानेके कमरेकी खिड़कीमेंसे साफ साफ देखी जा सकती थी। बच्चोंके

छीन-झपटकर भोजन करनेमें जो अप्रकट प्रेम भरा होता है, मुक्ताका मन भी शायद उचक उचक कर इस लालसाके लिए बेतरह मचल उठा; किन्तु जहाँतक पहुँचनेकी वह अधिकारिणी नहीं है, वहाँतक पहुँचनेका प्रयास भी उस लाचार बालिकाने नहीं किया।

विजयने खिड़कीमेंसे झाँककर उसे देखा, तो मुक्ता खिलखिलाकर हँस पड़ी और आनन्दके आवेगमें उन जंगली गुलाबकी महकती हुई झाड़ियोंमें छिप गई। तब विजय और उसके साथी खाना बीचमें ही छोड़कर, 'मालीकी लड़की, मालीकी लड़की' कहकर चिल्लाते हुए व्यग्रतासे मुक्ताको ढूँढ़ने लगे। उनके आगे-पीछे अनेक रंगोंसे चित्रित नन्हें नन्हें परोंवाली परियों-सी सुन्दर तितलियाँ उड़ने लगीं, मानो चुटकी बजाकर उन्हें चेलेंज दे रही हों, हमें पकड़ो, हमें पकड़ो। परन्तु मुक्ता न जाने कहाँ गुम हो गई थी।

बच्चोंके आश्चर्यका तो ठिकाना ही न रहा जब सहसा उन्होंने देखा कि मालीकी लड़की न जाने किस मार्गसे निकलकर फाटकके पास लाल-पीले फूलोंका गुलदस्ता लिए खड़ी हँस रही है। ऊषा, हर्ष आदि तो 'मुझे दो, पहले मुझे दो' कहकर उसकी ओर भागे; किन्तु समझदार विजय मुक्ताकी इस तीव्र बुद्धिका कायल हो गया।

यद्यपि इसी प्रकार किसी दिन बिल्लीका बच्चा देकर, किसी दिन बकरीका बच्चा दिखाकर और किसी दिन अपने आस-पासके चिर-परिचित जंगलमें छिपे हुए अनेक क्रीड़ा-स्थान

दिखाकर मुक्ताने इन शहरी बालकोंके मनको अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है, तो भी विजय, अन्य सभी बच्चोंपर उसके रोबको सहन नहीं कर सकता। अब भी वह भली प्रकार जानता है कि इस गँवार लड़कीको वह चाहे तो किसी भी अक्लके खेलमें परास्त कर सकता है।

३

दो दिनसे लगातार वर्षा हो रही है,—ऐसी मूसलधार, ऐसी तीव्र, मानो ऊपरके बादल व्याकुल होकर शीघ्रसे शीघ्र धरतीके पास पहुँचना चाहते हों; पहाड़ी झरने और नाले सबके सब एक साथ ही हृदयका सम्पूर्ण उल्लास बटोरकर गेरुये रंगसे जैसे होली खेल रहे हों। कोठीके नीचेवाला नाला तो न जाने अपनी कितनी ही रूठी हुई साथिनोंको मना लाया है और अपने निश्चित स्थानमें उछल उछल कर उन कल-कल हास्य करती हुई अनेक जल-धाराओंमें जा मिला है। इस जनहीन स्थानमें आज एक अपूर्व अभिनय-सा हो रहा है।

ठंड अधिक हो जानेके कारण कमरेमें अँगीठी जलाकर मृणालने छोटे बच्चोंको ज़बरन बिस्तरेपर सुला दिया और विजयसे कहा कि यदि वह सोना नहीं चाहता, तो बाहरवाले कमरेमें अँगीठीके पास बैठकर मास्टरका काम करे। माँका कहना मानकर विजय पुस्तकोंका ढेर लेकर बैठा तो सही; परन्तु इन भौतिक नदी, नालों, झरनोंकी चंचल ध्वनिके सदृश उसके चिन्ताविहीन कोमल मानसमें जो एक शुद्ध पवित्र उल्लासकी धारा-सी प्रवाहित हो रही है, भला वह क्यों न

आज इस मोहक प्रकृतिसे मिल जाये,—मनोहारिणी सृष्टिके जीवित-जागृत बिखरे पन्नोंको सामने फैला देखकर बालक विजय उन निर्जीव कागज़-पत्रोंमें अपना मन किस तरह लगाये ?

दोनों हाथ कोटकी जेबमें डाले विजय जी भरकर उस अलौकिक सौन्दर्यको खिड़कियों और दरवाज़ेकी राहसे देखता रहा और हाथमें छाता लेकर नीचे नाले तक जानेके मनसूबे बाँधता रहा। इस समय वह बिलकुल अकेला है, सारी कोठीमें एकदम सन्नाटा-सा छाया हुआ है। ऊषा, हर्ष आदि सभी बालक सोये पड़े हैं। दो-एक बार उनके पैरोंमें गुदगुदानेपर भी जब वे ऊँह-ऊँह करके सोये ही रह गये, तो विजय अनमना-सा हो गया। इधर वर्षाका वेग क्रमशः कम होनेको आया और एक नीरव शान्ति सभी ओर व्याप्त हो गई।

सहसा एक मुग्ध कल्पनाके आवेशमें विजयके दोनों हाथ जेबोंमेंसे निकले और ज़ोरसे बज उठे। इसी समय जब माली अँगीठीमें लकड़ी डालने आया, तो उसके भीगे वस्त्रोंमें चिपटी हुई-सी मुक्ता भी साथ ही दिखाई पड़ी। विजयने खुशीसे कहा, "ओ मालीकी लड़की! आओ, तुम्हें कैरम खेलना सिखायें।"

उष्णता और कैरम खेलनेका अनायास ही अधिकार प्राप्त कर सर्दीसे ठिठुरती हुई बालिका अरुणोदयकी प्रथम किरणकी भाँति खिल उठी। किन्तु ओह! वह तो इन खेलोंको कुछ भी नहीं जानती! काली-सफ़ेद गोटियाँ विजय स्वयं ही स्ट्राइकरकी चोटसे बोर्डके सूराख़ोंमें फेंक देता और अभिमानके साथ मुक्ताकी दीन-हीन आँखोंमें चकाचौंध करनेवाली निगाह

डालकर ज़ोरसे कहता, "देखा ! तुम्हारी अब छै गोटियाँ बाकी हैं, अब चार रह गई हैं और अब केवल दो ही बाकी हैं।"

नासमझ मुक्ता बार बार अपनी हार समझकर झेंप जाती थी। उसका नन्हा-सा दिल इस जीत-हारके, अहसानके बोझसे दबा जा रहा था। दो-चार दिनोंमें ही विजयने मुक्ताको लूडो और ताशके कई छोटे छोटे खेल सिखला दिये। अब वह हर घड़ी इसी प्रयत्नमें रहती कि किसी प्रकार ताशकी एक बाजी जीतकर विजयके सामने अपनी प्रखर बुद्धिका प्रमाण दे।

मुक्ता अब अपने व्यक्तित्वका दर्जा यहाँ तक ऊँचा समझने लग गई कि एक दिन जब वह सफ़ेद फूलोंके खेलमें खुली धूपमें बैठकर लूडो खेल रही थी, तो कतिपय पहाड़ी चरवाहे बालक उसकी ओर कुतूहलवश देखने लगे। एक बालकने साहस करके काश्मीरी भाषामें पुकारा, 'हय: मुक्ता!' तो अभिमानिनी मुक्ताने एक बड़ी-सी छड़ी हाथमें लेकर उद्दण्डतापूर्वक अपने पुराने साथियोंको भगा दिया, मानो वर्षोंसे वह विजयकी ही अंगरक्षिका रही हो।

पगली मुक्ताने उस समय तनिक भी यह विचार न किया कि किसी दिन यही विजय उसके अभिमानको चूर कर सकता है,—उसकी सारी कल्पनाओं और आशाओंकी मालाको एक ही झटकेमें तोड़ सकता है।

४

अपने सहृदय किरायेदारोंकी बिदाईके समय चौकीदारके मनमें क्षणिक मोहका जो संचार हो आया था, वह वेतनके

अतिरिक्त इनाममें मिले पाँच रुपयों और गर्म वस्त्रोंके ढेरको प्राप्त कर शान्त हो गया। अपने मालिकोंको कुछ दूर तक पहुँचाकर जब वह अपनी कोठरीमें पहुँचा, तो सबसे पहले उसने कपड़ोंकी गठरी खोली और देखकर खुशीसे उछल पड़ा। यह याद करके उसे विशेष सन्तोष हुआ कि गत वर्षके किरायेदारोंसे भी उसे दो कोट मिले थे। उसके पहले साल एक साहबने उसे एक बढ़िया ऊनी स्वेटर भी दिया था जो अब तक उसी तरह पड़ा था। आजके इनाममें एक काली बड़ी जर्सीके अतिरिक्त बच्चोंके बहुतसे कपड़े देख बहुत ही प्रसन्न हुआ कि इस वर्षकी भयंकर सर्दियाँ मज़ेमें गुज़र जायँगी।

एकाएक आसमानमें बहुत-से काले बादल घिर आये। मालीकी लड़की मुक्ता, जो सबेरेसे ही जंगलेपर मुँह लटकाये खड़ी थी, उस मेघाच्छन्न आकाश और उस सुनसान घेरेको एक बार चारों ओरसे देखकर सिसक पड़ी। वह न तो आँसुओंको रोक सकी और न रोना ही बन्द कर सकी। उसकी ऊँची रुलाई मानो भारी लहरोंकी तरह अदम्य रूपसे उस निस्तब्ध पर्वत-श्रेणीसे टकराकर गूँज उठी।

बेचारा माली सिवा इसके कि अपनी बच्चीको दौड़कर छातीसे लगा ले और उसके गर्म-गर्म आँसुओंको पोंछ डाले यह भी न जान सका कि उसकी प्यारी बच्चीके किस कोमल स्थानपर कौन-सी गहरी चोट पहुँची है। अपने विचारशील पिताके बहुत समझाने-बुझानेपर भी वह अबोध बालिका यह न मान सकी कि इसी भाँति अनेक किरायेदार इस कोठीमें

आते रहे हैं और भविष्यमें भी आया करेंगे।

मुक्ता कितने ही दिनोंतक उस पथरीले झरनेकी झरझरमें, उस सुरभित पवनकी सरसराहटमें और उन ऊँची शाखाओंपर झूम-झूमकर गाते हुए पक्षियोंके कलरवमें एक गहरे विषाद और घनी उदासीकी छाया अनुभव करती रही। न जाने कब तक तड़ तड़ ताली बजनेकी गूँज-सी उसके कानोंमें निरन्तर प्रतिध्वनित होती रही।

घर पहुँचकर विजय अब नियमपूर्वक स्कूल जाता है और लौटते समय सड़कसे ही ज़ोरोंसे तालियाँ बजाता आता है। उसकी ऊँची तालियोंकी आवाज़से सारी भव्य इमारत गूँज उठती है और अड़ोसी-पड़ोसियों तकको भी यह ज्ञात हो जाता है कि विजयकुमार स्कूलसे लौट आया है। सभी बच्चे उस पहाड़की यादको क्रमशः भूलते जा रहे हैं। आनन्दकुमारीको पहाड़पर जानेसे एक लाभ यह हुआ है कि उसे शरारती विजयको काबूमें लानेका एक नया उपाय मालूम हो गया है। आनन्दकुमारीके कालेजसे वापस आते ही जब विजय उसे तंग करने पहुँचता है, तो वह चुपकेसे उसके कानमें कह देती है, "सार्जेण्ट साहब, मालीकी लड़कीका क्या हाल है?"

बस, इतना ही काफ़ी है। विजय एकदम मुँह फुलाकर कहता है, "चलो, हम नहीं बोलते।"

कलकत्ता, १९३६

स्मृति

पुरातत्त्व-विभागके अफ़सर रायबहादुर जीवनलाल सेठी पुरानी इमारतोंकी खुदाईके कामके लिए काश्मीर स्टेटके द्वारा नियुक्त होकर श्रीनगर जा रहे थे। स्यालकोटमें अपनी नई कोठी बनवानेमें व्यस्त रहनेके कारण मिसेज़ सेठी साथ नहीं आ सकीं।

जम्मूसे चलते समय रायबहादुरको विश्वास दिलाया गया था कि आज रातको ही आप बुनाल पहुँच जाएँगे; किन्तु रामवनसे कुछ मील पहले ही पता लगा कि वर्षाके कारण आगे लगभग दस मील सड़क ख़राब हो गई है, और इसी कारण जम्मूसे आनेवाली प्रायः सभी मोटर-लारियाँ रामवनमें ही रुकी पड़ी हैं।

डाक-बँगलेमें कहीं जगह न मिलनेके कारण सेठी साहबको अनिच्छापूर्वक वहीं पड़ावपर ही कच्चे कोठेके चौबारेमें शरण लेनी पड़ी। चपरासीने मोटरमेंसे सूटकेस, होलडाल आदि आवश्यक सामान पहाड़ी कुलीसे उठवाकर और कमरेको झाड़-पोंछ-कर यथाविधि सोने लायक जगह तैयार कर दी।

पहाड़ी इलाकोंमें दिन प्रायः शीघ्र ही छिप जाता है। अभी पाँच ही बजे थे, और सामनेके पर्वत-शृंग संध्याकी अन्तिम किरणोंमें झिलमिला उठे हरित नील सुनहरे होकर।

चन्द्रभागा पड़ावसे प्रायः एक सौ गज़ नीचे जाकर बहती

है । बहेकड़ तथा जंगली अनारकी झाड़ियोंके बीचोंबीच मार्ग बनाती हुई जहाँतक पतली-सी पगडंडी पड़ी है, वहीं छोटे छोटे सफ़ेद पत्थरोंको इधर उधर लुढ़काती हुई ग्रामीण पहाड़ी कन्याएँ सिरपर पीतलके कलसे रखे आती-जाती रहती हैं ।

चौबारेके बाहर इश्कपेचेकी बेलसे आच्छादित छोटे-से बरामदेमें एक पुराने ढंगकी लोहेकी कुरसीपर बैठे बैठे रायबहादुर फाइलें उलटने लगे; पर ऐसे समय मन पढ़ने-लिखनेमे नहीं लगता । गोधूलिके धुँधले आलोकमें दूर दूरके वृक्ष आदि सजीव मूर्तियोंका आकार धारण कर लेते हैं; और न जाने मनमें कहाँ कहाँकी कल्पनाएँ उठने लगती हैं ।

सामनेकी पगडंडीसे कुछ स्त्रियाँ कलसोंमें चन्द्रभागाका जल लेकर जा रही थीं, कोई वृद्धा, कोई तरुणी । बढ़ते हुए अन्धकारमें स्पष्ट कुछ नहीं दीख पड़ता था । धीरे धीरे सभी स्त्रियाँ चली गईं । व्यथाके भारसे झुकी हुई केवल एक ही बहुत पीछे पड़ गई; पतली-दुबली, सरपर ओढ़नी और कानोंमें चाँदीकी बालियाँ,—मानो इतना भार लेकर जीवन-पथपर चलनेकी उसकी शक्ति बिलकुल ही चुक गई हो । अन्धकार फैल रहा था । स्त्री झाड़ियोंकी ओटमें ओझल हो गई । रायबहादुर उठकर भीतर चले गए ।

× × ×

दिन अगस्तके थे । रातमें हल्की ठंड हो गई । अभी भी पड़ावसे कुछ ऊपरकी पहाड़ीपर जम्मू स्टेटके जंगी सिपाही मिलकर प्रसिद्ध डोगरा गीत, 'साडा चान्नण अखियाँ दा

ओए—लोकी केंहदे '....गाए चले जा रहे थे।

अर्ध-जाग्रत अवस्थामें रायबहादुरने कलाईपर बँधी घड़ीमें देखा, अभी केवल बारह ही बजे हैं।

सहसा गीत समाप्त हो गया और गहरी निस्तब्धता छा गई। रायबहादुर उठे। बाहर बरामदेमेंसे झाँककर देखा, कृष्णपक्षकी रात्रिमें सामनेके पर्वत, पगडंडी, ऊँचे वृक्ष, झाड़ियाँ,—मानो निशीथमें मिलकर सभी एकाकार हो गए हैं। केवल चन्द्रभागा उज्ज्वल, गहन, गम्भीर-सी बही जा रही है। जाने क्यों रह रह कर संध्या-समय पानी भरकर लानेवाली स्त्रियोंमेंसे चाँदीकी बालियाँ पहने उस नारी-मूर्तिकी छाया बार बार उनकी आँखोंके सामने लौट लौट आती।

अन्दर आकर सेठी साहब पुनः सोनेका प्रयत्न करने लगे; किन्तु अकस्मात् गानेके स्वरमें मिली हुई चक्कीकी घरघरकी धीमी-सी ध्वनिने न जाने किधरसे आकर उनकी नींद उचाट दी। उठकर उन्होंने कमरेके पीछेवाली खिड़की खोली और फिर बहुत देर तक चुपके-से वे उस दृश्यको देखते रहे।

चौबारेके नीचे साथवाले कच्चे घरमें एक दूकान थी। एक ओर चने, गेहूँ, मक्केकी बोरियाँ, प्याज़, आलू, गुड़, लकीरदार कपड़ेके कुछ थान, दियासलाइयाँ, मोमबत्तियाँ आदि और उसी जगह दूसरे कोनेमें बोरिया बिछाकर खटोलेमें दो शिशुओंको सुलाकर चक्की पीसती हुई, मैला-सा दुपट्टा ओढ़े, वही पहाड़ी रमणी, सम्भवतः उन बच्चोंकी माता—

× × ×

उस अँधेरी निस्तब्ध रजनीमें उस चक्कीकी ध्वनिके स्पर्शसे मानो रायबहादुरकी बहुत-सी पुरातन स्मृतियाँ स्वप्नकी-सी जाग्रत हो उठीं। बहुत पुरानी बातें :

—टूटे-फूटे कच्चे-पक्के घेरोंसे मिश्रित एक घेरा, बीचोंबीच जिसके चर्खीवाला कुआँ था, नीचे गँदली-सी नाली और उसके सामने कूड़ेका अम्बार....

—मुहल्लेमें सबसे बड़ा दुमंजिला मकान, जो देवलीके नामसे पुकारा जाता था, शाहोंका घर कहलाता था। देवलीके नीचे आँगनमें गौएँ-भैंसें बँधी रहती थीं और वहीं साथवाले छज्जेमें मुन्शीजी पढ़ाने आते थे।

—माँकी छवि उन दिनों ठीक ऐसी ही लगती थी। चाँदीकी बालियाँ, मैले दुपट्टेसे ढका गोल-सा श्वेत मुख, कितनी ही वेदनाओंके भारसे झुकी हुई आँखें....

—ऐसे ही कभी बगलमें, कभी सिरपर कलसे रखे वह सुबह-शाम शाहोंके घर पानी पहुँचाने जाती और नाजकी टोकरियाँ और रुईके ढेर रातके कामके लिए ले आती थी।

—पिता शाहोंके घर दोनों वक्त पशुओंका चारा करने जाते, और दिनमें खाकी वर्दी पहने चिट्ठियाँ बाँटते।

—उसी मुहल्लेके एक कोनेमें थी उनकी लम्बी-सी कच्ची कोठरी जिसकी एक ओर चौकीपर पीतल-लोहेके दो-चार बर्तन तवा-चूल्हा आदि थे,—छतमें टँगे हुए फालतू कपड़े और मट्टीकी गिरती-दीवारोंसे सटी हुई मूँजकी दो खाटें।—कोठरीमें

रात-भर चूहे और नेवले दौड़ा करते। मिट्टीके तेलकी ढिबरी जलाकर रातको बारह बजे तक माँ चर्खा कातती और पुनः सबेरे चार बजे उठकर चक्की पीसने लगती।

—और माँ और बुआके पास एक ही ओढ़नी थी, जिसे वे बारी बारीसे पहन लेतीं।

—कभी हौले हौले माँके बालोंमें हाथ फेरते हुए पिता कह रहे होते, 'घबराती क्यों हो! हमारा जीवन बड़ा होशियार निकलेगा! मुन्शीजी कहते थे, पढ़ने-लिखनेमें उन लोगों (शाहोंके लड़कों) से भी तेज है।'

—माँका आह्लाद हृदयमें न भरकर आँखोंमें उमड़ आता।

—और तब उन्हीं दिनों वह घटना घटी। माँ और बुआको बिलखती छोड़ पिता जबरन रंगरूटोंमें भरती हो गए, शाहोंने बहुतसे रंगरूट सरकारको लाममें भेजनेके लिए दिए थे।

—तब समझमें नहीं आता था, माँ क्यों दिनों दिन पीली पड़ती जाती थी। वह एक कलसा तक न उठा सकती। चक्की पीसते, चर्खा कातते, आँसुओंकी वर्षा होने लगती।

—कुछ ही महीने बाद एक शिशुने जन्म लिया....तीन-चार मासके बालकको गोदमें लिये दुख-दरिद्रताकी घड़ियाँ माँ कैसे सहिष्णुतासे काट रही थी!

—कभी आधी रातमें दूधकी कमीके कारण सूखे स्तनोंसे चिपका बच्चा चीख उठता, और कई बार रोते-चिल्लाते शिशुको मेरे खटोलेपर लिटाकर माँ पुनः वेगसे नाज पीसने लगती।

—अनजानमें मनुष्य न जाने कितनी भयंकर भूलें कर बैठता है जिनकी तीक्ष्ण स्मृति चिरकाल तक अन्तरमें चुभती रहती है। आह! कैसा निष्ठुर उस समय हो गया था मैं! उस निरे अबोध रोते हुए शिशुको एक दिन अपने खटोलेसे मैंने नीचे ढकेल दिया। इसके बाद फिर सब कुछ समाप्त....

—कितना भयंकर रुदन था! आकाश-पातालको भेदनेवाला! अब दोहरी विपत्ति माँने सही थी। इधर वह शिशु चल बसा, उधर पिताके बदले कुछ सवार शाहोंकी कृपासे उनके प्राणोंका मूल्य बनकर घरमें आए और फिर उन रुपयोंके कारण ही बुआकी शादी हो सकी।

—कलकी तरह याद आ रहा है, जब मकानकी छत टूट गई थी और माँ स्यालकोट भाईके यहाँ गई थी।

—मामाके कई बच्चे थे। उनकी स्यालकोटमें एक दूकान थी। शामको जब मामा, गँडेरियाँ लौकाट और कभी रेवड़ियाँ लेकर लौटते, तब उनके आगे-पीछे सब बच्चे धूम मचाने लगते,—कोई कन्धोंपर चढ़ जाता, कोई गाँठ खोलने लगता, कोई रोना शुरू कर देता....

—और माँ तभी ऊपर छतपर जाकर मुझे छातीसे कसकर दबोच लेती और तारोंभरे आकाशमें न जाने एकटक-सी क्या खोजा करती!

× × ×

चाँद बीच आकाशमें पहुँच चुका था; पासवाले घरमें चक्कीकी ध्वनि बन्द होकर गहरी शान्ति छा गई थी; किन्तु

रायबहादुरको नींद नहीं आई; इसके बाद भी देर तक उन्हें अपने जीवन-प्रभातकी प्रमुख घटनाएँ याद आती रहीं।

चर्खे-चक्कीकी मेहनतसे पैसे बचा बचा कर माँने उन्हें किस तरह पढ़ाया—मैट्रिकमें सारी यूनिवर्सिटीमें वे प्रथम आए—वज़ीफ़ा मिला—आगे बढ़ते गए।

और जब एम० ए० की परीक्षामें प्रथम होकर वे घर लौट रहे थे, उसी समय रास्तेमें मालूम हुआ कि माँ दुनियामें न रही। बहू देखनेकी साध मनकी मनमें ही लिये चली गई—

रायबहादुरका हृदय उमड़ आया। छोटे बच्चेकी तरह सिसक पड़े—माँ !....माँ !....आओ....आओ....आज तुम्हारे जीवनके पास सब कुछ है: धन, ऐश्वर्य, आदर, सम्मान, स्त्री-पुत्र, हितू-मित्र, सभी; नहीं हो एक तुम्हीं....और तब एकाएक उनकी आँखोंके सामने चाँदीकी बालियाँ पहरे स्वर्गीया जननीकी प्रतिच्छाया-सा उसी पहाड़ी स्त्रीका स्वरूप खड़ा हो आया।—वैसा ही सूखा चेहरा, वैसी ही भरी हुई आँखें।

× × ×

प्रातःकाल जब पहाड़ी मुर्गेने बाँग दी और चपरासीने आकर सलाम किया, उस समय राय बहादुरका सिर भारी और बदन गरम हो आया था।

दिल्ली, १९३८

सुभाना

लालमंडीसे शिकारा (किश्ती) पार करके मैंने देखा, शेखबागमें लकड़ीके कारखानेके (जहाँ हम मिस्त्रियों, आरीकशों और बढ़इयोंके साथ खेला करते, उनके औज़ार उठा लिया करते, कभी कभी कोई बड़ा संदूक तैयार होता तो उसमें छिप जाया करते, वहीं एक बार लकड़ीके तख्तोंमें कोयलेसे लकीरें डाल-डालकर एक बहुत ही मनोरञ्जक खेल निकाला था) बदले एक शानदार कोठी बनी हुई है। कारखानेके पार्श्ववर्ती कब्रिस्तानकी नीले पुष्प-गुच्छोंसे ढँकी चार-दीवारी, जिसके पास हम भाई-बहनोंने सर्वप्रथम फ़ोटो खिंचवाई थी, बढ़ाकर ऐन कोठीके समीप कर दी गई है। इस विस्तृत अहातेमें आज उन पुरातन स्मृतियोंका मानो चिह्न-मात्र भी शेष नहीं रहा है। केवल शेखबाग़, पतनकी सीढ़ियाँ उतरकर, चार चिनारोंकी शीतल छायाके बीचों-बीच सफेद मिट्टीसे पुते हुए पब्लिक वर्क्स विभागका पुराना आफ़िस वृद्ध कर्मयोगीकी भाँति, जिसकी शान्ति प्रतापबागके आस-पास लारीवालोंके कोलाहलसे तनिक भी भंग नहीं होती, ठीक वैसे ही जैसे कि मैं बाल्यकालसे उसे देखती आई हूँ, खड़ा है।

उस ध्यान-मग्न आफिसमें चिनारोंकी मरमर-ध्वनिमें कुछ क्षण खड़े रहकर ज्यों ही बाजारकी ओर आगे बढ़ी तो मेरा

दम जैसे घुटने-सा लगा। इसी समय उमाने कहा, "यही तो है।" मैंने देखा बरामदेमें बड़ा-सा बोर्ड लटका हुआ है—'डा० जे० एन० किचलू' 'आँखोंके विशेषज्ञ' 'रिटायर्ड हैल्थ आफिसर'।

"जीजी, सुभाना ऊपर खड़ा है। यही सीढ़ियाँ हैं चलिए।" मैंने ध्यान नहीं दिया: ताज़ी धुली लकड़ीकी सीढ़ियोंपर नारियलका कार्पेट बिछा था। हम दोनों ऊपर चली गईं। सीढ़ियोंके समाप्त होते ही दो कमरे आमने-सामने दिखाई दिये; दाएँ हाथ डाक्टर जे० एन० किचलू और बाईं ओर उनके सुपुत्र ए० बी० किचलू दाँतोंके डाक्टरका नाम लिखा हुआ था।

अदायगीके साथ बाईं ओरके कमरेका पर्दा हटाते हुए एक बूढ़े व्यक्तिने कहा, "भीतर बैठिए, डाक्टर साहब अभी आते होंगे।" साथ ही एक क्षण बाद आश्चर्य-चकित, किन्तु नम्र स्वरमें मेरी ओर देखकर कहा,—"बहुत मुद्दतके बाद देखा माराज (महाराज), पछाना नहीं। राज़ी है बीबीजी, बहुत बड़ा हो गया।"

"सुभाना, मैं सचमुच बड़ी हो गई हूँ।" और मुझे सुभानाकी टूटी फूटी पंजाबी बोलीपर हँसी हो आई।

हम दोनों बैंचपर बैठ गईं। कमरेका वातावरण डाक्टरी ढंगका होते हुए भी मुझे अरुचिकर नहीं प्रतीत हुआ। कारण एक तो पूर्वकी ओर खुली खिड़कीमेंसे वही आफ़िसकी पुरानी इमारत नज़र आ रही थी। सफेदे, चिनारके वृक्षोंको और जेहलम

नदीको स्पर्श करती प्रातःकालीन पवनकी सुगन्धि कमरेमें फैल रही थी। दूसरे, डाक्टर साहब मेरे पिताजीके पुराने मित्र हैं। मैं उन्हें सदैव चाचाजी कहा करती हूँ।

"सुभाना, घोड़ी किधर गया?" उमाने मेरे कुछ भी पूछनेसे पहले ही प्रश्न कर दिया, यद्यपि वह सुभानाको मुझसे बहुत कम जानती है। जान-बूझकर ही मैंने सुभानासे कोई प्रश्न नहीं किया, क्योंकि मुझे अभी तक याद है, सुभाना उन दिनों काफ़ी मगरूर व्यक्ति था, और कुछ लड़ाका भी। स्टेटमें हैल्थ आफिसरके साथ सफ़ेद लट्ठेके वस्त्रोंमें पूरी शानके साथ घण्टी बजा बजाकर श्रीनगरके तंग गली-मुहल्लों-बाजारोंमें टाँगा चलानेकी नौकरी कुछ कम नहीं होती। घरके नौकरों-चाकरों तथा साधारण लोगोंकी तो बात क्या, म्यूनिसिपैलटीके ज़मादारों, कम्पाउंडरों, भिश्तियोंपर भी उसका काफ़ी रोब था। एक-दो बार टाँगेकी घण्टी यूँ ही बजा देनेपर जो डाँट उससे मैंने सुनी थी, उसीके कारण आज भी बोलनेका साहस नहीं हुआ। केवल हतबी ख़ैरी (डाक्टर साहबके बच्चोंकी नौकरानी) के साथ उसकी मित्रता थी, क्योंकि वह भी सुभानाकी तरह....

मुझे वह दिन याद करके बहुत हँसी आई जब स्वर्गीया कौशल्या,—डाक्टर साहबकी बड़ी लड़की हमारे घर रात तक, खेलनेमें देर कर देती तो सुभाना और ख़ैरी दोनों बारी बारी उसे लेने आते। ख़ैरीको तो कौशल्या फिर भी 'मोटी-राक्षसी चली जा,' कहकर भाग आती, किन्तु सुभानाकी एक नज़रमें ही

कौशल्याके होश गुम हो जाते। तब हम लोग कौशल्याको चिढ़ाया करते, " आया है सिपाही ? "

हाँ, तो आज सुभानाकी अवस्था एवं चाल-ढालका ऐसा दयनीय परिवर्तन देखकर भीतर ही भीतर मुझे क्लेश एवं आश्चर्य हुआ : मैली सी सलवार, गर्म पट्टीका फटा कोट, गिरती हुई पगड़ी, झुर्रीदार सूखा-सा चेहरा।

" सुभाना घोड़ी कहाँ है ? बेच दी क्या ? " उमाने पुनः प्रश्न किया। मेरा अनुमान है, टाँगा डाक्टर साहबका था और घोड़ी सुभानाकी अपनी।

सुभानाका चेहरा एकदम उतर गया और वह झाड़न लेकर मेज़ पोंछने लगा। उमाने पुनः दुहराकर पूछा, " सुभाना, घोड़ी मर गई क्या ? "

" मेरा—मेरा नसीब खोटा है। हाँ, हाँ मर गई, " वह बोला और उसका कंठ एकबारगी रुद्ध हो गया। संकेतसे हाथ ऊपर उठाकर " इतना—इतना बड़ा-बड़ा तीन लड़की बीबीजी ! " और फफक-सा उठा। मेरे जीमें उसकी वह भर्राई-सी आवाज़ तीक्ष्ण तीर-सी चुभ गई।

" और घरवाली भी। " इसके आगे वह बोल न सका। आँखोंके इशारे और चेहरेकी बनावटने ही प्रकट कर दिया कि सुभानाका घर-बार उजड़ चुका है। उसके मोटे मोटे आँसू फूट आये। बोला नहीं जाता था; किन्तु इस अवस्थामें भी सुभानाके कान चौकन्ने थे। बार बार पर्दा हटाकर देखता। कहीं मालिक तो नहीं आ रहे हैं ?

कठिनतासे आँखें पोंछीं और कहा, " अब मैं सात बच्चोंका बाप होता। " वृद्धने अपने दुःखको छिपानेकी भरसक चेष्टा की और पुनः मेरी ओर दृष्टि डालकर कहा, " आपका माई जद छोटे छोटे बच्चेको छोड़ गया ! मैंनू सब याद है बीबीजी, और शलोजी, (कौशल्याको वह शलो पुकारता था) दुनियामें कुछ नहीं। बस दुःख-सुख, प्यार—परमात्मा उनका स्वर्गमें भला करे। कैसा मीठा मैंनू दिया करती थी। कभी लड्डू, कभी मिठाई। मैं नमक-हराम नहीं हूँ। " उसके भाव अस्त-व्यस्त बिखर रहे थे। पर मैंने जान लिया, उसे भी वह दिन याद आ रहे हैं। मेरी स्वर्गीया जननीके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करना चाहता है।

उसकी आन्तरिक व्यथाका प्रवाह एक तेज़ धाराके समान फूट रहा था जिसके छींटे मेरे मानसपर भी पड़ने लगे—

" डाक्टर साहबको परमात्मा ज़िंदा रक्खे। जद उन्होंने पेन्शन पाया और मोटर ले लिया, तब मैंने कहा कि हम दूसरी जगह चला जाए पर डाक्टर साहबने और किधर काम करने नहीं दिया, इधर आपने काममें फिर लगा लिया।

" लेकिन, लेकिन किसके लिए बीबीजी ? " उसकी आँखोंमें पुनः मर्मान्तक पीड़ा वेगसे छलछला उठी, " सुख नहीं—सुख नहीं। "

क्षण-भरके लिए मेरे जीमें हो आया कि उसकी अपनी बच्चीकी तरह बन, अपने आँचलसे उसके आँसू पोंछ डालूँ, 'बाबा न रो! बाबा मत रो!' कह कर अथवा दुःखमें साथ दे ज़ोरसे रो पड़ूँ।

वह एक बार फिर कह उठा, "अगर कोई सुन लेता है तो अपना दुःख-सुख खोलकर बैठ जाता हूँ। कुछ जी हल्का हो जाता है। नहीं तो सब कड़वा है। बीबीजी, कुछ अच्छा नहीं लगता।"

और वह ज़बरन आँखोंको पोंछता हुआ पर्देसे बाहर हो गया। किन्तु तब भी मुझे पर्देके बाहरसे उसके रोते हुए उच्छ्वासों,—उसके जीवनके सूनेपनकी झलक आती रही—जब वह सन्ध्याके समय सिर लटकाये सूनी अँधियारी कोठरीमें जा तारे गिनता होगा, तब उसे हुक्का भरकर लानेके लिए अपनी रोहती-मुक्ति-मालतीकी परछाईं नज़र आती होगी। जब वह अकेला ही साग-भात खानेकी व्यवस्था करता होगा। रोज़ेके दिनोंमें बाँहमें बाँह डाले जेहलम नदीके किनारे जब वह माझियोंकी कन्याओंके गीत सुनता होगा। हाय! अस्थिर संसार!

इसी समय डाक्टर साहबने प्रवेश किया और सुभानाने लपककर झाड़न उठाया और उनके बूट झाड़े।

सीढ़ियोंमेंसे ही बूटोंकी आहट पा मैंने भी अपनी गीली आँखें पोंछ लीं थीं। डाक्टर साहबने बैंचके पास पहुँचते ही मेरा सिर दोनों हाथोंसे पकड़कर हिलाया। और कहा, "पगली, यहाँ क्यों बैठी हो?"

मैंने कहा, "चाचाजी, आपने ही तो कल कहा था कि आँखें दिखलानेके लिए डिस्पेन्सरीमें आना।"

श्रीनगर, १९३९

साथी

उन दिनों पंजाब नैशनल बैंकके मैनेजर पं० सूर्यनाथ कुँज़रू कलकत्ते तबदील होकर गए थे। प्रायः एक वर्षसे अधिक रहते हो गया; किन्तु उनकी पत्नी ताराका मन वहाँ किसी प्रकार भी न लगा।

हेरिसन रोडके कोलाहलमय वातावरणमें मोटर-बसें, ट्रामें, रिक्शा और घोड़ागाड़ियाँ वेगपूर्वक टनाटन-टनाटन करती भागती जातीं। दूर तक नरमुण्ड ही नरमुण्ड दिखाई पड़ते। और तब तारादेवी आँखें मूँदकर सोचने लगतीं, यह सम्पूर्ण कोलाहल किसी बृहत् नदीका कलकल-छलछल क्यों नहीं बन जाता? ऊँची ऊँची गगनचुम्बी इमारतें यदि हरे-भरे पर्वतोंका रूप धारण कर लें तो....?

ऊपरकी मंज़िलमें पारसी, नीचे चीनी, बगलवाले घरमें बंगाली और सामने मद्रासी रहते हैं; किन्तु किसीसे किसीको कुछ सम्पर्क नहीं। इस निःस्पृहताके कारण ही एक दिन जब सीढ़ियोंकी रेलिंगके पास खड़ी होकर सकुचाते हुए सामनेवाले घरकी लड़कियोंने पूछा, 'किरण कहाँ है?' तो ताराने किरणको एकान्तमें ले जाकर सावधान कर दिया कि वह इन ईसाई जैसी लड़कियोंके साथ अधिक मेल-जोल न बढ़ाए।

किन्तु इसके दूसरे ही दिन स्कूलसे लौटकर हाँफते हाँफते किरणने एक साँसमें कहना शुरू किया, "माँ, ये क्रिश्चियन

नहीं हैं, मद्रासी हैं, और इनके इतने इतने घुटनों तक लम्बे बाल है....रवि, ओ रवि, सूर्यासे कुछ मत कहना। यदि कोई सूर्यासे उसकी माँकी बात पूछे, तो रुलाई आ जाती है। माँ नहीं है न उस बेचारेकी।...."

"अच्छा," अबोध रविने बहनकी बातका पूरा अर्थ समझे बिना ही स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया, और किरणकी माँ आश्चर्य-चकित-सी देखने लगी।

× × ×

रत्ना, सीता, सूर्या गोविन्दरावके दूसरे विवाहसे अन्तिम सन्तानें हैं। ढाका जिलेमें बरसों तक एक सरकारी पदपर नियुक्त रहनेके बाद पेन्शन पाकर कुछ छोटे-मोटे व्यवसाय, शिक्षा आदिके कारण कलकत्तेको ही उन्होंने अपना निवास-स्थान बना लिया है।

बड़ा लड़का रामराव एक टाइपराइटिंग कम्पनीमें क्लार्क है, साथ ही बी० ए० की परीक्षा भी दे रहा है। उससे छोटे भाई कृष्णा और मूर्ति कालेजमें पढ़ते हैं। रत्ना, सीता, और पाँच वर्षके सूर्याको छोड़कर गोविन्दरावकी स्त्री मृत्यु हो गई। इस घटनाको हुए आज प्रायः तीन वर्ष बीत चुके हैं।

बच्चोंकी भाषा कुत्तों और बिल्लियोंकी भाषाके सदृश होती है। वे एक दूसरेकी बोल-चाल, देश-जातिसे नितान्त अनभिज्ञ होते हुए भी अल्प समयमें ही परस्पर अटूट सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं।

सीता और रत्ना किरणकी माँको माँ और उसके पिताको

पिताजी कहकर सम्बोधन करती हैं; वैसे ही रवि और किरण भी उनके भाईको दादा और वृद्ध पिताको बाबा कहकर पुकारते हैं।

रत्ना और सीता हरे रंगका फ्राक पहनेंगीं, तो किरण सफेद रंगका कैसे पहन सकती है? और यदि किरणके काले बूट आए हैं, तो रत्नाके दादाको भी वैसे ही लाकर देने होंगे।

माँके हज़ार मना करनेपर भी किरण, सीता, रत्ना, सूर्या, रवि सब एक साथ ही स्नानागारमें घुस जाते और घंटों ही नाचते-कूदते और चिल्ला-गाकर कोलाहल करते, जिसका अन्त प्रायः यह होता कि उनमेंसे कोई एक न एक अवश्य रोता हुआ निकलता।

२

संध्याकी अन्तिम किरणें सामने ही खपरैलकी छतपर पड़ रही हैं। कौवे एक कतारमें बैठे काँव-काँव करने लगे। आज प्रवासिनी तारादेवीके मनमें उन पक्षियोंको एक साथ बैठे देख बाल्य-कालकी न जाने कितनी ही स्मृतियाँ घिर आईं—जब वह स्कूलसे आते ही चुपकेसे बस्ता रखकर शकुन्तलाके घर भाग जाती और घंटों रंग-बिरंगे पत्थर अथवा चिनारके गोल गोल बीज इकट्ठा करनेमें बिता देतीं। और फिर हरी हरी घासपर औंधे लेटे तिनके कुटकते हुए इधर उधरकी बातें करते कितनी साँझें बीत जातीं, बातें नहीं बीततीं।

वे दिन न जाने कहाँ ओझल हो गये! आज उन सखी-सहेलियोंमें, जिन्हें वह प्राणोंसे अधिक प्यार करती थी, एक

भी सामने नहीं है। शकुन्तला दो बच्चोंको छोड़कर दो दिनके बुखारमें चल बसी और चम्पा पति और बच्चों सहित क्वेटा-भूकम्पमें....उफ़ !....

इसी समय कमरेके दरवाजे बन्द करके रत्ना, सीता और किरण खेल रही हैं : एक कोनेमें एक जापानी गुड़िया, नन्हें नन्हें चायके बर्तन, छोटी छोटी मेज़-कुर्सियाँ सजाकर रखी हैं। दूसरी ओर रवि तथा सूर्या गम्भीरतापूर्वक बाबूजी बने बैठे हैं।

"अच्छा, तो तुम लोग आज हमारे घर चाय पीने आना।" किरण और सीताको निमंत्रण देकर रत्ना स्वयं उन छोटे छोटे चीनीके बर्तनोंमें केले, सन्तरे और मिठाइयोंके जरा जरा-से टुकड़ोंको परोसती हुई अतिथि-सत्कारमें व्यस्त हो गई।

"सीता, तुम यह आस्मानी साड़ी पहन लो। लाओ, मैं पहना दूँ, और मैं यह ज़रीपाड़की पीली बनारसी साड़ी पहन लेती हूँ।" माँकी साड़ियोंको बक्समें उलट-पुलट करते हुए किरणने कहा।

"अरे! हमारी माँके पास भी तो ठीक ऐसी ही साड़ी थी।"—एक लाल रेशमी साड़ीको खींचकर सीताने कहा। और खेलमें निमन्त्रणकी बातको वहीं भूलकर रत्नाको खींच लाई, "क्यों दीदी, ऐसी ही साड़ी माँके पास थी न—ऐसी ही लाल लाल?"

ऐसा कहते हुए सीताने किरणके सम्मुख अपनेको गर्वित समझा और उल्लासके मारे उसका मुँह लाल हो गया। किन्तु रत्ना समझदार और कुछ बड़ी है। माँका नाम सुनते ही

हठात् उसकी आँखोंके आगे करुण स्मृतियाँ जागृत हो उठीं। अस्पताल जाते वक्त माँने उसे गोदमें लेकर मुख चूमकर कहा था, "रत्ना, सीता और सूर्याको बड़े प्यारसे रखना।" और रत्ना अभी कुछ बातें भी ठीकसे न कर पाई थी कि लोग उसे लेकर चले गये। इसके कई दिन बाद जब उसके पिता और भाई एक दिन अस्पतालसे केवल माँके कपड़े और गहने ही लेकर लौटे....उफ़!... तब उसके बाल-नेत्रोंमें भी प्रलयके चित्र छा गए और अन्तमें ज्वालामुखीकी-सी ज्वाला फूट पड़ी। सिर पटक पटक कर गला फाड़ फाड़ कर वह रोई थी, और फिर भी कैसी भयावनी थी वह रात! ऐसा प्रतीत होता था, सूर्य अब उदय ही नहीं होगा।

दूसरे दिन उठकर उसे माँके कपड़े सहेजने पड़े थे, और उनमें एक लाल साड़ी थी....ठीक इतनी ही लाल.... ऐसी ही....

उस दिन खेल आदि कुछ नहीं हो सका। रत्ना घर चली गई। और किरण भी हतबुद्धि-सी बाहर माँके पास आ बैठी।

३

घरकी चीज़ोंको इधर उधर तथा माँकी साड़ियोंको बक्समेंसे निकालकर उलट-पुलट करनेके अपराधमें उस रात किरणको काफ़ी डाँट फटकार सुननी पड़ी। इसी कारण प्रायः एक सप्ताह तक वह स्कूलसे आते ही पुस्तक खोलकर चुपचाप पढ़ने बैठ जाती, या कभी अनमनी-सी होकर फ़र्शपर लकीरें खींचा करती।

किन्तु एक दिन माँको प्रसन्न देखकर किरणने साहसपूर्वक कहना आरम्भ किया, "रात्र दादा बड़े कमज़ोर हो गए हैं; उनके बाल सफेद होने लगे हैं; उन्हें घरकी बड़ी चिन्ता रहती है न? अबके वह पास भी नहीं हुए और अब बाटानगरमें काम करने चले गए हैं। कल सारी रात रत्ना जागती रही है। ज़रा-सी भी आहट होनेसे उसे लगता था, मानो दादा आए हैं।"

तारादेवीको किरणकी गम्भीर मुख-मुद्रा और सरलतापूर्ण बातोंसे हँसी हो आई। ये लोग अलग रह ही नहीं सकते, कितना भी इन्हें क्यों न रोका जाय। और तब आज न जाने क्यों अनायास ही उनके हृदयमें उन मातृहीन पड़ोसी बच्चोंके प्रति अत्यन्त स्नेह उमड़ आया।

उन्होंने हँसकर कहा, "कई दिनोंसे इधर रत्नाको नहीं देखा। उसके घर तू गई नहीं क्या इतने दिन?"

किरण छिप छिप कर जाती तो थी रोज़; किन्तु माँके पूछनेपर आज क्या उत्तर देना चाहिए यह निश्चित नहीं कर सकी, इसलिए अकचका गई। तब तक माँने कहा, "आज शामको ज़रा बुलाना तो उसे। कई दिनोंसे देखा नहीं बेचारीको।"

"अभी बुला लाती हूँ माँ!" कहकर अत्यन्त उत्साहसे किरण दौड़कर रत्नाके घरकी ओर चली। और फिर उसी दिनसे आना-जाना पहलेसे भी अधिक बढ़ चला।

इसके बाद दोनों परिवारोंमें घनिष्ठता बढ़ती ही गई। संध्यासे पूर्व नित्य ही वृद्ध पिताको लाठी पकड़ाकर रत्ना और

सीता (साथ साथ किरण भी) इधर बरामदेमें धूपमें बिठानेके लिए ले आतीं। किरणकी माँ पहलेसे ही चारपाई बिछवा देतीं और वृद्धके आते ही सहज भावसे सिरका पल्ला खींच जल-पान आदिकी व्यवस्था करने लगतीं।

४

जीवनके आदिसे अन्त तक मनुष्य न जाने कितने सम्बन्ध बनाता और तोड़ता चला जाता है; किन्तु इनमेंसे कुछ एक ऐसे होते हैं, जिनकी याद विस्मृतिकी सूखी घाटीमें कभी कभी अकस्मात् किसी उच्छृंखल पहाड़ी नालेके समान उमड़कर न जाने कैसी हलचल-सी मचाकर उसे आप्लावित कर देती है। और तब स्मृतिके इन मृदु पावन लघु क्षणोंमें प्राणी जिस अलौकिक आह्लाद, जिस अद्भुत सौन्दर्यको पा लेता है, वह अकथनीय है।

" कल रात मैंने सपना देखा था, सीता और रत्ना यहाँ आई हैं, उन्हें बुला दो न माँ ! " अधीर-सी होकर किरणने माँके गलेमें ज्वरसे तपते हुए दोनों हाथ डालकर कहा।

अपनी बच्चीके कोमल हृदयमें अनायास उमड़ी हुई वेदनाको उसकी माँने सहज ही समझ लिया। और फिर उसके मनमें रह रह कर वे दिन याद आने लगे जब कलकत्तेसे लौटनेमें कुछ ही दिन शेष थे। संध्या होते ही सुन्दर पलंगपर बिजलीके प्रकाशमें सब बच्चे उदास-से बैठ जाते। सम्भवतः उनके पुष्प-से कोमल हृदयोंमें उस नवविकसित प्रेमके छिन्न-भिन्न हो जानेकी आशंका जाग उठती थी।

उन्हें उदास देखकर वे हँसकर कहतीं, "रत्ना, लाहौर जाकर एक बड़ा-सा मकान लूँगी और तब फिर तुम लोगोंको वहीं बुलवा लूँगी; क्यों, आओगी न ?"

तब उन लोगोंके चेहरे खिल उठते। एक दूसरीको आलिंगन करतीं हुई वे एक नई सुखद कल्पनामें विभोर हो उठतीं,—"लाहौर जाकर हम एक ही स्कूलमें पढ़ेंगीं, एक ही तरहके कपड़े पहनेंगी। सब लोग कहेंगे तीनों सगी बहने हैं। एक कमरा हम तीनों अलग लेंगीं। सूर्या और रविको साथ नहीं रखा जायगा; वे दंगा करते हैं...."

और आनेके दिन जब सभी परस्पर मोतियोंके हार तथा शीशेकी चूड़ियाँ आदि स्मृति-चिह्न दे-लेकर विदा हुईं, तो माँके हृदयमें जैसे कोई कहने लगा, 'सदाके लिए....सदाके लिए....' उनका जी भर आया। संसारमें कौन किसका है? एक चंचल लहरकी तरह ये लोग मिलीं और बिछुड़ गईं। मालूम नहीं, अब वे लोग कहाँ हैं, किस दशामें हैं, कैसी हैं !

ज्वर-निद्रित किरणकी आँखोंमें आँसू देखकर तारादेवी चौंक पड़ीं। तकियेके पास ही पेन्सिलकी टूटी-फूटी लिखावटमें एक अधूरी चिट्ठी पड़ी थी। उन्होंने उसे धीरेसे उठाया। उसमें लिखा था, "प्यारी रत्ना और सीता ! मुझे तुम्हारे सपने आते हैं। जब मैं नहाने जाती हूँ, जब कंघी करने लगती हूँ, जब खाने बैठती हूँ, तब याद आता है, कैसे हम लोग एक साथ खाते थे, खेलते थे और झगड़ा करते थे ! वह दिन भी याद है, जब हमने दीवालीमें बहुत-से पटाखे छोड़े

थे। इस बार मुझे आतिशबाज़ी जरा भी अच्छी नहीं लगी। स्कूलकी कोई लड़की अभी तक मेरी सहेली नहीं बनी। कल दो लड़कियाँ स्कूलके एक कोनेमें बातें कर रही थीं, तब मुझे रुलाई आ गई, और मैं इतना रोई कि...."

पत्रमें केवल इतना ही पढ़ा जाता था, और इसके बाद जो कुछ लिखा था, वह शायद आँसूके बूँद चू जानेके कारण फैलकर अस्पष्ट हो गया था।

और तारादेवीको लगा कि आँसुओंसे मिटा हुआ उतना भाग अस्पष्ट होकर और भी स्पष्ट हो उठा है!

नई दिल्ली, १९३९

क़ैदी

वह एक जीवित मांसकी लोथ-सा दिखाई देता था। सफ़ेद रक्तहीन चेहरेपर कीच-युक्त अधखुली आँखें, मुँहसे बहती हुई लार, जो उसकी बढ़ी हुई दाढ़ीपरसे एक डोरेकी तरह टपक रही थी और जिसपर मक्खियोंने अधिकार जमा लिया था। उसके काँपते हुए सिरने, जिसे वह हथकड़ियोंकी रगड़से दोनों घाव-युक्त कलाइयोंके सहारे थामे हुए औंधा पड़ा था, उसकी आकृतिको और भी भयावना बना दिया था।

बेड़ियोंकी जंज़ीरोंको पकड़े हुए यदि उसके दोनों ओर दो लाल पगड़ीवाले सिपाही न होते, तो कोई भी यात्री ऐसे घिनौने मरणासन्न व्यक्तिको बसमें न घुसने देता।

उसी दिन प्रातःकाल उन लोगोंने लाहौरसे मोटर-बसद्वारा श्रीनगरके लिए प्रस्थान किया था। करीब दो बजे जम्मूशहरके अन्तमें, जहाँसे जम्मू-काश्मीर-वैली रोड प्रारम्भ होती है, मोटर-बस पेट्रोल लेनेके लिए खड़ी हुई। पेट्रोल-पम्पपर खड़ा होना, विशेषतया गर्मीके दिनोंमें, यात्रियोंके लिए बहुत नागवार-सा होता है।

अगली सीटोंपर दो-तीन कालेजके विद्यार्थी थे, बीचकी पूरी सीटोंपर दो स्त्रियाँ तथा उनके दो बच्चे और पिछली सीटोंपर जम्मू शहरसे सवार हुए तीन-चार यात्री जो सब्ज़ी आदि काश्मीर ले जानेका व्यवसाय करते थे, और एक

ख़ानसामा भी था।

विद्यार्थी अख़बार और पुस्तकें उलट-पलटकर देखने लगे; दोनों स्त्रियोंमेंसे एक ऊँघ रही थी और दूसरी नीचे सुदूर समतलपर एकटक देख रही थी, मानो अपने बीते हुए जीवनके वर्ष गिन रही हो।

"क्या वह बीमार है?"

"जी हाँ, यह बीमारी इसे जेलमें ही हो गई थी।"

इसी समय पिछली सीटोंपर कुछ भनभनाहट हुई, और अगली सीटोंके सभी यात्रियोंकी दृष्टि उस विकृत मनुष्यकी ओर आकर्षित हुई। सड़कपर कुत्तेकी मरते समय जो दशा होती है,....अभी दस मिनटमें ही सबका जी लगभग उसी तरहके भय, आशंका और ग्लानिसे एकबारगी भर गया।

रामनगर-महलको पार करते ही पथरीले पहाड़ आरम्भ हो जाते हैं। नीचे दूर तक रेत और सफ़ेद पत्थरोंके विस्तृत मैदानमेंसे मार्ग बनाती हुई तवी नदी बह रही है। उस पार कुछ हरी हरी खेतियाँ, बहेकड़की झाड़ियाँ और कुछ दूरीपर समीप आती हुई विशाल पर्वतश्रेणियाँ,—यह सब कितने सुहावने प्रतीत होते हैं; किन्तु आज ड्राइवरकी कृपासे सब...

यात्रियोंका अनुमान था कि उसकी ज़बान बन्द हो चुकी है, वह मूर्च्छित है और अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है; किन्तु वे मानो भूत-प्रेतके मुखसे सुन रहे हो, "पानी! पानी!...."

"तो अभी वह जीता है?"

"शायद न मरे।"

सब लोगोंने एक साथ ही सिपाहियोंकी ओर देखा।

" देते हैं पानी, सबुर करो।"

" रास्ता सूखा है, पानी यहाँ कहाँ मिलेगा ?"

ड्राइवर अपनी तेज़ चालसे मोटर लिये जा रहा था। सात-आठ मीलके बाद एक दूकानसे पानी मिला, किन्तु उस जीवित लोथने स्पर्श करते ही मुँह फेर लिया, " न.... न....ठंडा पानी....बर्फ़....पानी....हुँ हुँ...."

" वाह रे लाट साहब ! ठंडा पानी,—बर्फ़....पानी.... नवाब तो तू ही है।"

सब लोगोंने पुनः सिपाहियोंपर एक नज़र डाली।

" पानी....त्रेश....त्रेश...." *

"अजी, यह तो जेलमें झुलस गया है। काश्मीरी है न ?"

" पहाड़ी लोगोंको वैसे ही नीचे भेज देना बड़ा भारी दण्ड है, और फिर जेलमें....या अल्लाह !" ख़ानसामेने कहा।

" लो बादशाहो !"

ऊदमपुर पहुँचकर दूसरे सिपाहीने ठंडे पानीसे भरा लोटा क़ैदीके मुँहसे लगाया। हाँफते हुए घोड़ेकी तरह वह एक साँसमें ही लोटेका पानी समाप्त कर गया।

अगला पड़ाव कुद सैनिटोरियम है। चील वृक्षोंमेंसे सरसराती हवा, संध्याकालीन नीले आकाशमें जहाँ तहाँ छितराये बादल, एक एक मोड़के बाद ऊँचाई ! तीन घंटेमें कितना परिवर्तन !

" रोटी !—क्या तेरी माँने पका रखी है ?" पीछे फिर भनभनाहट हुई।

---

* काश्मीरी भाषामें 'त्रेश' पानी और प्यासको कहते हैं।

लोथ! नहीं, अब हम उसे क़ैदी कहेंगे। क़ैदीके चेहरेका रंग अब पीला हो गया था, और क्रमशः उसमें जीवनके चिह्न जागृत हो रहे थे। हाँ, तो क़ैदीने पुनः धीरेसे यन्त्रणा-भरे स्वरमें कहा, "भूख! रोटी!"

यात्री उसके इस आश्चर्यजनक परिवर्तन और कुसमयकी माँगको सुनकर हँस पड़े। स्त्रियोंमेंसे एकके पास कुछ खानेकी सामग्री थी। चलती गाड़ीमें उसने अपनी टोकरीमेंसे कुछ ताज़ा कलाकन्द, मूँगकी तली दाल और दो आम सिपाहीके हाथमें दिये।

"लो, जलसे करो दोस्त! सतवरे ते कुश नहीं मिलया।" (लो, जलसे करो दोस्त! सात वर्षसे तुम्हें कोई चीज़ नहीं मिली।)—सिपाहीने डोगरी-भाषामें कहा।

"कितने वर्षकी क़ैद थी?" पिछली सीटके एक वृद्ध महाशयने पूछा।

"सात वर्षकी।"

"ओह! सात वर्ष तो एक लम्बा अरसा होता है।" एक ठंडी साँसके साथ उसने कहा।

"खानेको क्या मिलता होगा?"

"दो सूखी रोटियाँ और दाल दोनों वक्त, और क्या? जनाब, जेल है, जेल!"

"अब इसे कहाँ ले जा रहे हैं?"

"इसकी सज़ा खतम हो गई है, बीस ही दिन बाक़ी हैं। हरि-पर्वतजेलमें इसे छोड़कर हममेंसे एक आदमी वापस आ जायगा।"

क़ैदी मिठाई समाप्त कर चुका था और आमोंका रस उसकी

काली घनी दाढ़ीसे टपकता हुआ हथकड़ियों तक जा पहुँचा था। अपने समूचे जीवनमें ऐसी मिठाइयों और आमोंके रसका उसने कभी आस्वादन नहीं किया था।

मोटर-बस इस समय एक ऊँची चोटीपरसे गुज़र रही थी। अँधेरा हो चला था। पार्वतीय शीतल वायु, रसपूर्ण पदार्थोंकी तृप्ति एवं 'घर जा रहा है' सिपाहीके इन शब्दोंने उसके विक्षिप्त अंगोंमें अद्भुत चेतनाका संचार कर दिया।

क़ैदी मुस्कराया, "अज भत्ता खाएगा।" (आज चावल खाऊँगा।)

"हाँ, आज रातको पुलाव खिलायँगे, मामाजी!" सिपाहीने व्यंग्यसे उत्तर दिया।

वृक्षोंमेंसे अर्द्धचन्द्र कभी निकलता और कभी छिप जाता। जिस समय मोटर-बस पड़ावपर खड़ी हुई, यात्री एक चौबारेमें चले गए और क़ैदी सिपाहियोंके पीछे पीछे ढुलकता हुआ ऊपरकी पहाड़ीपर स्थित पुलिस-चौकीपर ले जाया गया।

क्षितिजमें अभी काफ़ी तारे बुझते-जगते नज़र आते थे। चन्द्रमाकी छाया इस पार अभी फीकी भी नहीं पड़ी थी कि ड्राइवरने पों-पों करके हार्न बजाना आरम्भ किया। यात्रियोंने बिस्तरे बाँधकर पहाड़ी कुलियोंद्वारा सामान नीचे भिजवा दिया। केवल 'क़ैदी'के आनेकी देर थी।

'नामुराद! कमबख्त!' दो-चार अन्य भी भद्दी गालियाँ देकर ड्राइवरने पुकारा।

आज उसका सिर नहीं काँप रहा था। पीला कुरता,

जाँघिया और टोपी पहने डोर-बेड़ियोंकी झनझन ध्वनि करता हुआ वह सिपाहियोंकी साथवाली सीटपर अधिकारपूर्वक बैठ गया।

धुन्ध, घनी छाया, सामनेके पर्वतोंमें गहरी निस्तब्धता लगातार कई मीलों तक छाई थी। सभी यात्री गर्म वस्त्रोंमें लिपटे हुए बैंठे थे।

आखिरकार इस एकरसताको भंग करते हुए वृद्ध सज्जनने कहा, "क्यों जी, फिर रातको खूब भात खाया?"

"सब हड्डियाँ, सब जूठा भात!" रोषपूर्ण स्वरमें कैदीने उत्तर देते हुए स्त्रीकी ओर देखा, "माईजी, सलाम।"

"खुदा तैनूँ जिन्दा रखे।"

"बकता है!" सिपाहीने मानो सफ़ाई पेश करते हुए कहा, "सारी रात तो सोने नहीं दिया—कभी रोता था, कभी हँसता था। ख़बर नहीं, इसे क्या हो गया था!"

कैसे वह एक पालतू कुत्तेकी भाँति हवालातके एक कोनेमें सींकचोंसे बाँध दिया गया था, चन्द्रमाकी चाँदनीमें घंटों वह किस तरह चावल और मांस पकानेकी सुगन्धिका मज़ा लेता हुआ अपने मिट्टीके प्यालेकी ओर देखता रहा, और जब तक पड़ावकी पुलिसका हवालदार जम्मू-जेलसे आये हुए अपने अतिथियों (सिपाहियों) की ख़ातिरदारी करता और उनके साथ बैठकर मांस-चावल आदि खाता रहा, तब तक वह अधीर हो उचक उचक कर देखता रहा। रातकी सारी घटनाएँ कैदीके आगे घूम गईं। वह पुनः चिल्ला उठा, "हड्डियाँ माईजी! सब जूठा भत्ता! माईजी, अज चाय पिलाएँगा। जे अज

चाय नहीं पिएँगा, ते फेर कद पिएँगा ? ज़िन्दगानी, परवरदिगार तैनूँ....'' (माईजी, आज चाय पिला दो। आजके दिन अगर चाय नहीं मिलेगी, तो फिर कब मिलेगी ? परवरदिगार तेरी आयु....)

और सामनेकी चोटियोंपर प्रभात-वेलामें नवीन तिरछी किरणें अलौकिक प्रकाश फैलाने लगीं। चन्द्रभागा दूरसे उस विशाल पर्वतमालाके चरणों-तले पतली धारा-सी दिखाई पड़ी। यात्री इस अपूर्व सौन्दर्यपर मुग्ध हो उठे।

"यही क़िला है काश्मीरका कालापानी। पहले महाराजके समयमें जिसे आजन्म कारावास होता था, उसे यहीं छोड़ देते थे।"

दोनों ओर महान् पर्वतोंके बीचोंबीच अकेला एक छोटा-सा पर्वतखण्ड—कुछ भग्नावशेष और घिरा हुआ। लोगोंने एक साथ ही उस भयावने स्थान एवं क़ैदीकी ओर देखा। फिर कुछ ढलान आई, और चन्द्रभागा उछलती, कूदती, पूरे यौवनमें प्रवाहित होती समीप आ गई।

"आब छुस—आब ! आब !" (पानी है—पानी ! पानी !) क़ैदी ख़ुशीके मारे ज़ोरसे चिल्लाया—इतना कि सिपाहियोंको उसे डाँटना पड़ा। क़ैदी गाने लगा—

"अज़ाबल म्यान दीदार जाने
छलछल म्यान दीदार जाने
वला म्यानी पोशे-पोशे
चे कुत छुइ शान व्यथिरालो
बागे़ निशातके गुलो।

—"ओ मेरे छलछलाते देश, बेंत वृक्षोंके घेरेमें चिनारके पेड़के नीचे अज़ाबल (एक छोटी झीलका नाम)!

—बर्फ पिघल गई है, नवीन कोंपलें फूट निकली हैं। नरगिस, गुलाब, यास्मान, ओ निशात बाग़के फूलो!

—और शगूफा निकल आया है। वेदमुश्ककी महक हमारे शिकारे तक आ पहुँची है। ओ मालती, समावारमें चायकी पत्तियाँ डाल!

—ओ मालती, मैं डाँड़ लेकर डोंगेको बाहर ले चलता हूँ और तू चप्पू चलाना!"

चन्द्रभागा सड़कसे कुछ ही नीचे अठारह बीस मील तक साथ ही साथ बही है। अनेक छोटे छोटे नाले, हिमखण्डोंसे पिघलते हुए प्रपात-झरने, जड़ी-बूटियोंमेंसे होते हुए उसके साथ मिल रहे हैं।

और कैदी अपनी मस्त तानसे काश्मीरी-भाषामें गाता चला जाता है; किन्तु गानेके प्रत्येक अन्तिम चरणमें एक करुण भयावनी चीख उसके मुँहसे निकल जाती है। सिपाहीने फिर डाँटकर कहा, "कुत्तेकी तरह रोता क्यों है, कमबख़्त?"

अब श्रीनगर केवल पचास मील शेष रह गया है। हरी-हरी धानकी खेतियाँ, सफेदोंसे घिरी सड़कें, फलोंसे झूलते पेड़ और नववसन्तके सौरभसे आलोड़ित समूची उपत्यका मानो उसका आतिथ्य कर रही हो। सड़कोंपर काम करनेवाले कुली, खेतोंपर काम करनेवाले किसान, लम्बे कुर्ते और टोपियाँ पहने काश्मीरी बच्चे मोटर-बसकी तेज़ चालमेंसे भी क़ैदीकी आत्माके साथ एकाकार हो रहे थे। वह बरबस मोटरकी खिड़कीमेंसे मुँह बाहर निकालकर चिल्लाया, "काशर

छुस हतो।" (अरे, तुम काश्मीरी हो न।)

किसी भी व्यक्तिसे काश्मीरी-भाषामें बात करनेके लिए उसका हृदय मानो छटपटा रहा था। वह कभी सीटपरसे उठता, कभी सिर बाहर निकालकर देखता और कभी बीचकी सीटवाली स्त्री और उसके बच्चेकी ओर देखकर कहता—"जिन्दगानी, परवरदिगार, माईजी! ओ म्यानी दोस्ता! (लड़केकी ओर देखकर)—मेरे दोस्त!"

स्त्री बार बार क़ैदीके इस व्यवहारपर झेंप जाती और उसका लड़का क़ैदीको 'अपना दोस्त' कहते सुन झुँझलाने लगता।

"अजी, सात वर्ष इसने चाय नहीं पी। सात वर्ष इसने भात नहीं खाया। सात वर्ष तमाकू नहीं पिया और सात वर्ष किसी स्त्री और बच्चेका मुख नहीं देखा।"

"क्यों हज़ूर?"—ख़ानसामेने सिपाहियोंकी ओर देखकर मुस्कराकर, कहा।

"अरे, चुप कर। माईजी, माईजी मत कर। रातको भी पूछता था, वह मिठाई देनेवाली माईजी क्या कल भी होंगीं?"

फिर कुछ मील निकल गए।

"मे छुस बड़ गुनाहगार, म्यानी खुदाया! ओ परवरदिगार, मेदिमो राहत!" (या खुदा, मैं बड़ा गुनाहगार हूँ, मुझे सीधे रास्तेपर ले चल।)

सीटोंके मध्यमें नीचे दोनों हाथोंपर सिर रखकर मानो उसके अन्तरसे कोई मर्मान्तक व्यथा फूट रही हो। क़ैदी सिसक रहा था। जान पड़ता था, जैसे ऐसी क्रिया उसका अंग बन चुकी है!

वह पुनः उठा और जोरसे हँस पड़ा, " शाली, शाली ! " ×

शहर समीप आ गया था। बादामी बागके मैदानमें भीड़ एकत्र हो रही थी। " महाराज ! महाराज ! " वह उछल पड़ा, " मैं सौगन्धपूर्वक कह सकता हूँ, महाराज खेलने आये हैं। "

खानसामेने पूछा...." तुम्हारी माई है ? "

क़ैदीका सिर पुनः लटक-सा गया।

" नहीं। " उसने सिर हिलाकर कहा। " बच्चे हैं ? "

उसका गला भर आया। एक नज़र उस बीचकी सीटवाले लड़केकी ओर डालते हुए क़ैदीने हाथोंके संकेतसे कहा— " दोनों नहीं। एक लड़का था, एक लड़की, और.... " वाक्यको समाप्त करनेसे पूर्व उसने एक दृष्टि इस भाँति उस शस्य-श्यामला भूमि, उस कलकल-छलछल करती हुई नदी— जेहलम, उस विस्तृत नीले आकाशमें फैले उड़ते सफ़ेद बादलोंकी ओर घुमाई जिनकी आशासे वह कल जी उठा था। जैसे आज फिर सब कुछ सूना हो गया हो। उसने रुँधे गलेसे ज़ोर लगाकर कहा, " और शादी भी मर गया। "

सब लोग हँसते हँसते लोट-पोट हो गये। बससे उतरते हुए खानसामेने कहा—

" वाह ओये खुश रहो जवानां,
पैंडा सोणा कट छोड़आई। "

(वाह जवान ! खुश रहो, रास्ता अच्छा कट गया है !)

कनाट-सर्कस, नई दिल्ली, १९४०

समाप्त

× ' शाली ' काश्मीरी भाषामें ' धान ' को कहते हैं।